ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 03 मई 2026

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 03 मई 2026 से 09 मई 2026

ज्येष्ठ कृ. 02 ● वि० सं०-2082 ● वर्ष 67, अंक 18, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 202 ● सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,126 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रु. ● वार्षिक शु. 300/- रु.

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. प्रबन्धकर्त्री समिति ने मनाई महात्मा हंसराज जी की 162वीं जयन्ती

डी.ए.वी. संस्थाओं की संख्या 1000 होने पर भव्य समारोह

"यह कहना अत्यन्त कठिन है कि महात्मा हंसराज का तप ज़्यादा था या त्याग। लेकिन ये दोनों भाव डी.ए.वी. के लिए आधार भूमि बन कर उभरे हैं। आने वाले समय में इस आधार को और अधिक पुष्ट करना होगा।" यह शब्द आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. के यशस्वी प्रधान आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी जी ने कहे। डॉ. सूरी हरियाणा प्रदेश के फरीदाबाद स्थित राज्य खेल परिसर में आयोजित महात्मा हंसराज की 162वीं जयन्ती पर देश भर से आए डी.ए.वी. प्राचार्यों, अध्यापिकाओं की लगभग 10,000 की उपस्थिति को संबोधित कर रहे थे।

हरियाणा के खेल परिसर में आयोजित यह पर्व दर्शकों के दिलों में अमिट छाप छोड़ गया।

कार्यक्रम का आरम्भ भव्य रूप से सजाई यज्ञशाला में सम्पन्न यज्ञ से हुआ। यज्ञ के मुख्य यजमान के रूप में आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी ने अपनी धर्म पत्नी श्रीमती मणि सूरी के साथ यज्ञ में पवित्र आहुतियाँ प्रदान कीं। यज्ञ वेदी पर अन्य यजमानों के रूप में न्यायमूर्ति श्री प्रीतमपाल जी सपत्नीक, श्री प्रबोध महाजन जी, सपत्नीक, डॉ. एस.के. सपोरी सप्तनीक, श्री योगेश मुंजाल जी तथा अन्य पदाधिकारी विशेष रूप से उपस्थित रहे।

डी.ए.वी. बल्लभगढ़ के संगीत शिक्षकों एवं छात्राओं द्वारा प्रस्तुत एक मधुर भजन से यज्ञ का आरम्भ हुआ। देश भर से आये 16 संन्यासी और 15 आर्य विद्वान् व विदुषियाँ इस यज्ञ पर मुख्य यजमान को अपना आध्यात्मिक आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित थे। डॉ. प्रमोद के ब्रह्मत्व में सम्पन्न इस यज्ञ में डी.ए.वी. के पारम्परिक वेष में आये छात्र–छात्रायें तल्लीन होकर मंत्रपाठ कर रहे थे। अपने स्वभावानुसार मुख्य यजमान डॉ. सूरी ने यज्ञोपरान्त पहले यज्ञशाला में उपस्थित यजमानों और आर्यजनों पर पुष्पवृष्टि कर आशीर्वाद दिया। इससे पूर्व उन्होंने उपस्थित संन्यासियों और विद्वानों के चरणों में पुष्प अर्पित कर आशीर्वाद ग्रहण किया।

इसके बाद संन्यासियों और विद्वानों ने आगे बढ़कर पुष्पवृष्टि से प्रधान जी को आध्यात्मिक आशीर्वाद दिया।

मुख्य कार्यक्रम विशेष रूप से निर्मित भव्य मंच पर आरम्भ हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी ने, श्रद्धेय स्वामी ऋतस्पति, विशिष्ट अतिथियों एवं मंच पर उपस्थित उपप्रधान वृन्द एवं निदेशकों के साथ दीप प्रज्ज्वलन किया। डी.ए.वी. गान के साथ कार्यक्रम आरम्भ हुआ।

सर्वप्रथम मान्य प्रधान जी ने विशेष आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित स्वामी ऋतस्पति सरस्वती जी के चरण स्पर्श कर उन्हें अंग वस्त्र, प्रशस्तिपत्र और तुलसी का पौधा देकर सम्मानित किया। इसके साथ दो विशिष्ट अतिथियों डॉ. (प्रो.) टंकेश्वर कुमार व प्रो. डॉ. कर्मजीत सिंह का पुष्प देकर स्वागत किया।

इसके पश्चात् प्रधान जी मंच पर अपनी बायीं ओर आसीन संन्यासियों की ओर बढ़े और एक–एक करके सबका आशीर्वाद ग्रहण करते हुए अंगवस्त्र, प्रशस्तिपत्र, पौधा और सम्मान राशि देकर अभिनन्दन किया। मंच के दायें ओर विराजमान आर्य विद्वानों/विदुषियों का सम्मान मंचस्थ उपप्रधान जस्टिस प्रीतम पाल जी, डॉ. एस.के. सपोरी, श्री प्रबोध महाजन जी, श्री अजय सूरी जी (महामंत्री), श्री विनय आर्य ने किया।

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 03 मई 2026 से 09 मई 2026

आओ, देवों के मार्ग पर चलें

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

आ देवानामपि पन्थामगन्म, यच्छक्नवाम तदुनुप्रवोढुम्।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता, सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति।।

अथर्व 16.56.3

ऋषिः **ब्रह्मा।** देवता **अग्निः।** छन्दः **त्रिष्टुप्।**

● **(अपि)** क्या **(देवानां)** देवों के **(पन्थां)** मार्ग पर **(आ– अगन्म)** [हम] चलें? [हाँ], **(यत्)** यदि **(तत् अनुप्रवोढुम्)** उस पर स्वयं को चलने में **(शक्नवाम)** समर्थ हों। **(अग्निः)** आत्मा **(विद्वान)** विद्वान् है, **(सः)** वह **(यजात्)** यज्ञ करे, **(सः)** वह **(इत्)** सचमुच **(होता)** होम–निष्पादक है। **(सः)** वही **(अध्वरान्)** यज्ञों को और **(सः)** वही **(ऋतून्)** ऋतुओं को **(कल्पयाति)** रचाये।

● आओ, हम देवों के मार्ग पर चलें। यज्ञ के तंतु से बंधे रहना ही देवों का मार्ग है। देखो,ये सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पृथिवी, ऋतु, संवत्सर आदि देव कैसे 'यज्ञ' के मार्ग पर चल रहे हैं।कभी उनके यज्ञ–पालन में व्यतिक्रम नहीं होता। शरीर में भी मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ आदि देव कैसे संगठित हाक देवयान का अवलम्बन कर शरीर–यज्ञ को चला रहे हैं। समाज में भी 'देव' पदवी को पाये हुए महापुरुष 'यज्ञ' के ही पथ पर चल रहे हैं। और, सबसे बड़ा देवों का देव परमात्मा भी निरन्तर देव–मार्ग पर चलता हुआ इस ब्रह्मांड–यज्ञ का सम्पादन कर रहा है। हम चाहते हैं कि हम भी इस देव–मार्ग के पथिक बनें। क्या तुम कहते हो कि इस मार्ग पर चलना अति कठिन है, तलवार की धार पर चलने के समान है, अतः पहले अपनी शक्ति को तोल लो कि तुम इस पर स्थिर रह भी सकोगे या नहीं, उसके पश्चात् इस मार्ग पर पग बढ़ाना? सुनो, हमने अपने सामर्थ्य को भलीभांति परख लिया है। हमारा आत्मा 'अग्नि' है, अग्रणी है, तेज का पुंज है, ज्योतियों की ज्योति है। वह 'विद्वान' है, देवों की राह पर चलना और चलाना जानता है। अतः हमें देव–प्रदर्शित यज्ञ–मार्ग भटक जाने का कोई भय नहीं है। हम निश्चिंत होकर उसके हाथों में अपनी 'यज्ञ' की पतवार सौंप रहे हैं। वह 'होता' है, यज्ञ– निष्पादन में कुशल है,संस्कृत हवि का होम करने में निष्णात है। वह जानता है कि यज्ञ को 'अध्वर' अर्थात् हिंसा–रहित ही होना चाहिए। भद्रजनों को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया यज्ञ यज्ञ नहीं है। हमारा आत्मा 'अध्वर' यज्ञों को रचाये और वही यह भी देख कि किस यज्ञ के लिए कौन–सी ऋतु, कौन–सा समय उपयुक्त है क्योंकि काल–अकाल का विचार किये बिना प्रारम्भ किया गया यज्ञ सफल नहीं होता। आओ, हम देव–पथ के पथिक बनें। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु–भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

स्वामी जी मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करते हुए कहते हैं कि हे मानव ! जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है, तू इसमें आने वाली बाधाओं को नष्ट कर। मन की निर्बलता को दूर कर। मन की कमज़ोर कड़ी है कि वह एक काल में एक ही कर्म कर सकता है अतः उसे सत्कर्मों में लगा दे, बुरे कर्म से वह अपने आप को दूर रखेगा। प्रभु भक्ति निःशुल्क है फिर भी इसका खरीददार उपलब्ध नहीं है। क्यों ? क्योंकि पूर्व जन्म के पापों से ग्रसित होने के कारण सन्मार्ग की ओर जाता ही नहीं। चाहता है, सोचता है, जानता है फिर भी कुटिल मार्ग का अनुसरण करने लगता है। अतः वेद, वेदांग, दर्शन, स्वाध्याय, सत्संग आदि से मन को सबल बना। अज्ञान से ज्ञान की तरफ चल। आत्मा के सच्चे स्वरूप व उद्देश्य को समझकर जीवन में उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़।

मर्यादित जीवन जीएँ। अच्छा व उपयुक्त भोजन करें। अज्ञान से बचें, सच्चे ज्ञान को प्राप्त करें। दिखावा या अहंकार न करें। व्यवहार में मधुरता लाएँ। व्यर्थ के झगड़ों से बचें। जो लोग ज्ञानी होने का दिखावा मात्र करते हैं या झगड़ालू होते हैं वे प्रभु दर्शनों से वंचित ही रहते हैं...।

.... **अब आगे**

उसके पात्र

प्रभु–दर्शन की इच्छा रखनेवालों के अन्दर सबसे पहला गुण यह होना चाहिए कि वे पूर्ण रूप से ईश्वर–विश्वासी हों, प्रभु पर अटल श्रद्धा और अटूट विश्वास से मन भरपूर हो। वह है, और सर्वत्र व्यापक है, हमारे एक–एक हाव–भाव को देखता है और कोई भी बात उससे छिपी नहीं रह सकती। शक्तिशाली इतना है कि सारी सृष्टि पलभर में समाप्त करना और इसे फिर नये रूप में बना देना उसके लिए उतना ही सुगम है जितना हमारा आँख बन्द करके खोल देना। करोड़ों सूर्य उसके संकेत पर घूम रहे हैं। समस्त धन, कुल, सम्पत्ति उसी की है। ऐसे शक्तिशाली भगवान् की मैंने शरण ली है। ईश्वर–विश्वास के ज्वलन्त उदाहरण देखने हों तो भगवान् दयानन्द का जीवन पढ़ो। सारा संसार विरोधी है और प्रभु–विश्वास के सहस्रों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं और किसी भी समय शिथिल नहीं होते। काशी में महाराज स्वामी दयानन्द अकेले ही थे। काशी के लोगों ने निश्चय कर लिया था कि दयानन्द को हानि पहुँचायेंगे। भारी भय था, इसीलिए बलदेवप्रसाद ने स्वामी जी के पास पहुँचकर कहा–"महाराज, आज बहुत भीड़ होगी, यह गुण्डों का नगर है। यदि फर्रुखाबाद होता तो दस–बीस मनुष्य आपकी ओर होते।" स्वामी जी यह बात सुनकर हँसे और बोले–"योगियों का निश्चित सिद्धान्त है कि सत्य का सूर्य अन्धकार की सेना पर अकेला ही विजय पाता है। जान जाये तो जाये, परन्तु ईश्वर की आज्ञा–जो सत्य है, वह न जाये। बलदेव ! क्या चिन्ता है? एक मैं हूँ, एक ईश्वर है, एक धर्म है।"

यह है ईश्वर का विश्वास! इसी प्रकार प्रह्लाद का जीवन देखिये। संसार का कौन–सा कष्ट है जो उसे सहन नहीं करना पड़ा? मगर वह शेर की भाँति सबका मुकाबला करता रहा और हर विपत्ति में यही कहता रहा–

डूबव जरव ना बात कछु,
तैं जै लागी लाग।
जहाँ प्रीति काँची नहीं,
कहँ पानी कहँ आग।।

भक्त को अपने हृदय में यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि मेरा मस्तक केवल एक परमात्मा के सामने झुकेगा, और किसी के सामने नहीं। मेरे मन–मन्दिर में उसी देव का सिंहासन होगा, और किसी का नहीं। भयंकर–से–भयंकर आपत्ति और बड़े से बड़ा सुख भी मुझे प्रभु से विमुख नहीं कर सकेगा। संसार की समस्त विपत्तियों को ललकार–कर यह कह दे–

ओ३म् उत ब्रुवन्तु नो
निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद्दुवः।।
उत नः सुभगां
आरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि।।

ऋ. 1.4.5,6

"चाहे हमारे निंदक कहें कि तुम जो इन्द्र परमात्मा की ही पूजा करते हो, सो तुम यहाँ से और अन्य स्थान से भी

निकल जाओ।। 5।। और चाहे धर्मात्मा जन हमें सौभाग्यवान् कहें, किन्तु हे अद्भुत कर्मों वाले परमात्मा इन्द्र। हम तेरी ही शरण में रहें।। 6।।" संसार की कोई शक्ति भक्त के प्रभु–विश्वास को शिथिल नहीं कर सकेगी, इस प्रकार का ईश्वर–विश्वास भक्त के हृदय में होना चाहिए।

हर हाल में खुशहाल–

दूसरी बात भक्त के हृदय में यह होनी चाहिए कि परमात्मा ही हमारी माँ है और निश्चय ही माँ जो कुछ करती है हमारे कल्याण के लिए करती है। जिस भी अवस्था में वह हमें रक्खे, उसी में हम प्रसन्न रहें। इसका प्रयोजन यह नहीं कि भक्त आलसी और दरिद्री बन जाये। नहीं। अपितु भक्त को तो पूर्णरूपेण प्रयत्नशील होना चाहिए।

प्रत्येक कार्य को पूरे ध्यान से सम्पन्न करना चाहिए, पूरी मेहनत करनी चाहिए। यदि कोई रोग अथवा आपत्ति आ जाए तो उसके निवारण के लिए अपनी और दूसरों की बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए, अपनी ओर से कोई कसर उठा न रखनी चाहिए किन्तु जब उसका परिणाम अच्छा या बुरा (हमारी दृष्टि से) निकल आये तो प्रभु का धन्यवाद करना चाहिए कि भगवान्, तूने मेरे लिए जो उचित समझा वह कर दिया। मेरा कल्याण इसी में होगा। इसी को सन्तोष भी कहते हैं। अपनी ओर से पूरा यत्न कार्य–सिद्धि के लिए करने के पश्चात् उसका फल जैसा भी मिले उस पर सन्तुष्ट हो जाना और यह समझना कि प्रभु की ऐसी ही इच्छा थी और इसी में मेरा कल्याण है, यह भाव भक्त के मन में होना चाहिए।

माँ अपनी सन्तान को कभी भी दुःखी देखना नहीं चाहती। वह बच्चों को दूध पिलाती है, अच्छे–अच्छे भोजन खिलाती है, सुन्दर वस्त्र पहनाती है, चूमती है, प्यार करती है, परन्तु बच्चा रोगी हो जाए तो मिठाई उसके हाथ से छीन लेती है और कड़वी औषध पिलाती है और जब कभी बच्चा शरारत करता है या कड़वी दवा नहीं पीता, तो चपत भी लगा देती है। जब भक्त ने परमात्मा को अपनी माता स्वीकार कर लिया तो फिर हमारी दृष्टि में हम पर कोई आपत्ति आती है, निर्धनता, पुत्र–वियोग, पति–वियोग, पिता–वियोग, या ऐसे ही और कष्ट आते हैं, तो भक्त को यही विश्वास होना चाहिए कि मेरा कल्याण इसी में था। वह रोये क्यों? वह हाहाकार क्यों करे? उसके अन्दर से तो यह ध्वनि निकलेगी–

जीता रखे तू हमको,
या धड़ से सर उतारे।
अब तो ये भक्त प्रेमी,
कहता है यूँ पुकारे।।
राजी हैं हम उसी में,
जिसमें तेरी रजा है।
या यूँ भी वाहवा है,
और वूँ भी वाहवा है।।

कुछ लोगों का विचार है कि प्रभु कृपा केवल सांसारिक धन– संपत्ति, वैभव और सुख ही में दिखाई देती है। जो सांसारिक दृष्टि से बहुत सुखी हो, उसके विषय में लोग कहते हैं कि इस पर प्रभु की महान् कृपा है परन्तु भक्त को ऐसा नहीं समझना चाहिए। प्रभु कृपा की वर्षा दिन–रात सब प्राणियों पर हो रही है। यह रुकी है न रुकेगी। हाँ, यह ठीक है कि कभी तो वह सुन्दर–से–सुन्दर रूप में प्रकट होती है और कभी वीभत्स–से–वीभत्स रूप में। जब कोई सर्जन ऑपरेशन कर रहा होता है और शरीर को कितना ही चीर–फाड़कर रख देता है तो बाह्य दृष्टि से देखनेवाला नादान तो यही कहेगा कि कितना निर्दयी है यह डॉक्टर ! किस बेरहमी से आदमी को काट रहा है ! रोगी के चीखने– चिल्लाने पर भी तो इसे दया नहीं आती ! परन्तु उस मूर्ख की बातें सुनकर सर्जन ऑपरेशन का काम छोड़ नहीं देता क्योंकि वह जानता है कि रोगी का कल्याण इसी में है कि उसकी चीर–फाड़ की जाए।

मेरे एक मित्र की धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। वह अपनी धर्मपत्नी के सुन्दर स्वभाव, उसकी सुशीलता, उसकी कार्यकुशलता और उसके प्रेम पर मुग्ध थे। जब वह बीमार पड़ी तो उन्होंने इलाज में कोई कसर उठा न रक्खी। परन्तु रोग कम होने की बजाए बढ़ता ही गया और रोते हुए पति को छोड़कर वह देवलोक सिधार गई। मेरे मित्र की अवस्था बहुत बिगड़ी। उन्हें सारा संसार अन्धकारमय दिखाई देने लगा। ज्ञान की किसी बात से उन्हें शान्ति न मिलती थी, परन्तु अब जब से प्रभु–भक्ति के मार्ग पर चलने लगे हैं, आत्म–दर्शन की कुछ लटक लगी है तो स्वयं ही कहते हैं–"भगवान् ने मेरा बड़ा कल्याण किया है। मेरी आयु समाप्त हो रही थी, मुझे पत्नी–प्रेम भगवान् की ओर जाने ही नहीं देता था। अच्छा हुआ जो उससे छुटकारा मिल गया। यदि ऐसा न होता तो मैं जिस अमृत का नित्यप्रति पान कर रहा हूँ, कैसे करता ?"

इसी प्रकार हमें पता नहीं होता कि हमारा कल्याण किसमें है। हमारी आँखें, हमारी बुद्धि बहुत दूर तक देख नहीं सकती। हाँ, उसकी आँखें दूर तक देखती हैं। वही जानता है कि हमारा कल्याण किसमें है। इसलिए भक्त ईश्वर–विश्वासी हो, वहाँ उसके अन्दर यह पक्की धारणा भी होनी चाहिए कि प्रभु सदा हमारा कल्याण करता है। वह अद्भुत है और अपने अद्भुत उपायों से ही सब काम करता है। कुछ बातों को हम समझ जाते हैं और कुछ को नहीं समझ सकते अतएव जिस हाल में वह रक्खे, उसी में खुशहाल रहने का स्वभाव भक्त को बनाना चाहिए।

आत्मविश्वास–

इन दोनों बातों के बाद तीसरी बात 'आत्म–विश्वास' स्वयमेव भक्त में उत्पन्न हो जाती है। अपने–आप पर भरोसा करने की भीतर से प्रेरणा होने लगती है। अपने–आप को सारे संसार के परिपालक पिता का पुत्र अनुभव करके फिर भला कौन तुच्छ रहेगा? महान् के साथ मिलकर तो वह महान् हो गया। अब वह कभी अपने आप को असहाय, अनाथ और असमर्थ नहीं कहेगा। वह सदा आशावादी बना रहेगा। निराशा (Pessimism) कभी उसे छू भी नहीं सकेगी। प्रत्येक भले कार्य में शूरवीरों की तरह वह भाग लेगा और विजयी होगा। कायरता, भय, आलस्य और प्रमाद उसके निकट न आयेंगे। उसका हृदय उल्लास से भरपूर होगा और उत्साह की अग्नि उसे कभी ठण्डा नहीं होने देगी। वह दूसरों के कन्धों पर सवार होने के स्थान पर स्वयं अपना कार्य सम्पन्न करनेवाला बन जायेगा। आत्म–विश्वासी भयंकर से भयंकर क्षेत्र में भी कूदने पर उद्यत रहता है क्योंकि उसे अपनी भुजाओं पर, अपने मस्तिष्क पर और अपने आप पर पूरा भरोसा होता है। वह फिर दूसरों की कमाई को ललचाई हुई दृष्टि से नहीं देखता, अपितु दूसरों की कमाई पर निर्भर रहना पाप समझकर अपने हाथ से कमाता है। वह तो इस सिद्धान्त को मानता है–

तुलसी कर पर कर करो,
कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो,
ता दिन मरन करो।।

प्रभु मन्दिरों की सेवा–

उसे पानेवाले भक्तों के अन्दर एक और मुख्य गुण यह होता है कि वे सारे भूतों को आत्मा में और सब भूतों में आत्मा को देखते हैं। सारे मनुष्य उसे परमात्मा के मन्दिर दिखाई देते हैं और वह कौन भक्त है जो अपने प्रियतम के किसी भी मन्दिर को देखकर खुशी से उछल न पड़े! प्रभु की सारी प्रजा फिर उसे अपना सम्बन्धी ही दिखाई देगी। वह किसी से भी द्वेष नहीं कर सकेगा। न ईर्ष्या, न स्पर्धा, न शत्रुता, कुछ भी बाकी न रहेगा। फिर तो वह यही गाता फिरेगा–

करुँ मैं दुश्मनी किससे,
अगर दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने नहीं दिल में जगह
छोड़ी अदावत (शत्रुता) की।।

यही नहीं, अपितु यदि वह अपने भगवान् के किसी मन्दिर को मैला, टूटा हुआ या गन्दा देखेगा तो वह तत्काल ठीक करने में लग जायेगा। ऐसे भक्त मनुष्यमात्र से प्रेम करने लगते हैं। उनके लिए कोई बेगाना नहीं रहता। विशेष रूप से दुःखियों के लिए उनका प्रेम– स्रोत बह निकलता है। भक्त से मेरा तात्पर्य वह 'भक्त' नहीं, जो मनुष्यों से दूर भागकर वनों और पर्वतों की कन्दराओं में जा बैठे; प्रत्युत भक्त वह है, जो अपनी चिन्ता छोड़ प्रभु–मन्दिरों की चिन्ता करे। सच्चे भक्त का गुण ही यह है कि वह स्वयं हानि सहकर भी दूसरों को लाभ पहुँचाये। जिस प्रभु–मन्दिर में ज्ञान का दीपक नहीं जलता, भक्त का कर्त्तव्य है कि उसमें दीपक जलाये। जो मन्दिर अन्न–रूपी चूना–सीमेंट के प्रभाव से जीर्ण–शीर्ण हो रहा है, भक्त को चाहिए कि उसकी ओर ध्यान दे।

निस्सन्देह, भक्ति से तात्पर्य यही लिया जाता है कि स्वर्ग मिल जाये या मोक्ष मिल जाये। जो सकाम भक्त होते हैं, वे सांसारिक सुखों की खरीदारी करते हैं परन्तु सच्चा भक्त इन तीनों बातों से ऊपर उठ जाता है, वह न इस दुनिया का राज्य चाहता है, न स्वर्ग की इच्छा उसे सताती है और न ही वह मुक्ति के लिए उतावला होता है। वह आनन्द में लिप्त होकर कह उठता है–

न त्वहं कामये राज्यं न
स्वर्गं न पुनर्भवम्।
प्राणिनां दुःखतप्तानां कामये
दुःखनाशनम्।।

"न मुझे राज्य की कामना है, न स्वर्ग और न ही मोक्ष की। हाँ, मैं यह समझता हूँ कि भगवान् मुझे संसार के दुःखों से तपे हुए लोगों के कष्ट–क्लेश को दूर करने की शक्ति प्रदान कर दें।" यही इच्छा उसे व्याकुल करती है और इसी धुन में वह रात–दिन लगा रहता है–

अपनी फिक्र न कुछ करें,
प्रभु प्रेम के दास।
सूई नंगी खुद रहे,
और सबका सिये लिबास।।

भक्त के हृदय में अपने और पराये का भाव ही नहीं रहता। जब वह अपने और दूसरों के शरीरों को भगवान् के मन्दिर ही समझता है तो फिर वह दूसरों के दुःख, कष्ट और क्लेश को अपना ही दुःख समझेगा और अपनी

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गतांक से आगे...

नया वर्ष कब ?

● स्वामी चिदानन्द सरस्वती

यथार्थ नूतनसंवत्सर

अभी तक यह स्पष्ट किया गया है कि– जनवरी–1 किसी भी परिस्थिति में संवत्सर का पहला दिन नहीं हो सकता। पुनः नया वर्ष कब प्रारम्भ होता है? इस प्रश्न के समाधान को जानने से पूर्व कुछ अन्य प्रश्नों पर विचार करते हैं। दिन वा सूर्योदय सदा नये–नये ही आते हैं, कभी भी पुराने नहीं आते। कल का सूर्योदय आज के सूर्योदय से भिन्न ही था और आज का सूर्योदय भविष्य में पुनः कभी नहीं आयेगा। प्रत्येक सूर्योदय भूत भविष्य से अतीत नव–नूतन ही उदित होते हैं। जब प्रतिदिन या प्रत्येक सूर्योदय नया है, तो पुनः 'नया वर्ष' का अर्थ क्या है ? वर्षभर में एक ही दिन नया आता है, शेष सब पुराने आते हैं, ऐसा अर्थ तो हो नहीं सकता। संवत्सर के प्रत्येक दिन या सूर्योदय को पुराना समझने वाला व्यक्ति एक दिन या सूर्योदय को नया कैसे समझ सकता है? इस प्रकार के प्रश्न करने वाले लोगों का अभाव नहीं है। इन प्रश्न कर्ताओं से यदि यह पूछा जाए कि आपका जन्म दिन क्या है? तो वह वर्ष के किसी एक दिन को अपना जन्म दिन बताएँगे अर्थात् वह दिन उस व्यक्ति का पहला दिन है, उसी दिन वह नये वर्ष में प्रवेश करेगा। वह उसका नया वर्ष है, उसकी अवस्था (आयु) में एक नई संख्या जुड़ जायेगी। उसी प्रकार नया वर्ष का अर्थ है सृष्टि का जन्मदिन, उसी दिन से नया वर्ष आरम्भ होता है।

जब सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ था, तब चारों ओर हरे–भरे एवं पुष्पित वृक्ष–वनस्पति आदि, विविध पक्षियों की मनोरंजक ध्वनियाँ और प्रकाशमान सूर्यादि नक्षत्रों से देदीप्यमान आकाश इत्यादि से, आकर्षक तथा आह्लादजनक विचित्र स्थितियाँ थीं। उस समय उत्पन्न मानव किस प्रकार की आनन्दानुभूति प्राप्त किये होंगे? कल्पना करके देखें। उस प्रकार के मानव एवं सृष्टि के जन्म दिन का स्मरण करना ही नया संवत्सर है। उसी दिन से सृष्टि का नया दिन आरम्भ होता है।

यह सृष्टि उत्पन्न होकर अभी तक (2083 विक्रम संवत्, मार्च– 2026 तक) 1,97,29,49,127 वर्ष बीत गये। इस परिगणना में कुछ लोगों को सन्देह होता है कि इतने सुदीर्घ कालगणना को मानवों ने कैसे याद रखा है? इसका समाधान अत्यन्त सरल है। प्रत्येक व्यक्ति जिस प्रकार अपने जन्म दिन और अवस्था (Age) को बार–बार स्मरण करते हुए, दूसरों को बताते हुए याद रखता है, उसी प्रकार सृष्टि का काल भी याद रखा गया है। वैदिक संस्कृति एवं भारतीय परम्परा में हमारे प्राचीन ऋषि–मुनियों ने कुछ अद्भुत पद्धतियों को इस समाज में प्रवेश कराया है। तद्यथा– कोई भी व्यक्ति गुरुओं को, विद्वानों को वा अन्य पूज्यों को अभिवादन करते समय अपने गोत्र, वंश, पिता आदि का नाम उच्चारण करते हुए अपनी विद्यापरम्परा अर्थात् अपने वेद, शाखा, सूत्रादि को ज्ञापित करता था। यह परम्परा आज भी ब्राह्मणों में प्रचलित है। इससे गोत्रादि का विस्मरण नहीं होता। जो इस परम्परा को नहीं अपनाये, वे अपने गोत्र को भूलकर पर्वत, नदी, नगर, वृक्ष आदियों के नामों को या निरर्थक शब्दों को अपने गोत्र के रूप में चला रहे हैं। सम्प्रति आधुनिक प्रभाव से ब्राह्मण भी उस परम्परा को त्यागते जा रहे हैं, अस्तु। इसी प्रकार सृष्टि का काल विस्मृत न हो. इस उद्देश्य से हमारे ऋषि–मुनियों ने प्रतिदिन किये जाने वाले संध्या, यज्ञ, पर्वयज्ञादियों को प्रारम्भ करने से पूर्व संकल्प पाठ करने की परम्परा को प्रचलित कराया। इस संकल्प में यजमान या पुरोहित सृष्टि के आरम्भ से लेकर यज्ञानुष्ठान के समय तक के सम्पूर्ण काल की गणना संस्कृत भाषा में करते हैं, साथ में ब्रह्माण्ड से लेकर यज्ञानुष्ठान के स्थल तक अर्थात् ब्रह्माण्ड, भूलोक, द्वीप, देश, प्रदेश, पर्वत वा नदियों के प्रान्तों का नाम, नगर, ग्राम, घर, स्थान आदि का भी उल्लेख करता है। तत्पश्चात् अपने मनोगत शुभकामनाओं को अभिव्यक्त करता है, यही संकल्प है। यह परम्परा आज भी धार्मिक कृत्यों में सुरक्षित चल रही है। इस प्रकार की परम्पराएँ भारतदेश को छोड़कर अन्यत्र मिलना असम्भव है। इस प्रकार की परम्परा से आगत वा ज्ञात सृष्टिकाल को आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार कर रहे हैं।

इस नववर्ष (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा) तक सृष्टि में सर्वत्र हमें नूतनत्व दिखाई देता है। वृक्ष, वनस्पति आदियों में पत्ते झड़कर नये–नये पत्ते, फूल, फल आदि विकसित होकर हरितमय मनोरम दृश्य दिखाई देता है। ऐसे वातावरण में मोर भी विकसित पंखों से नृत्य करने लगते हैं। वसन्त ऋतु में अर्थात् चैत्र–वैशाख मासों में मधुमक्खियाँ भी छत्तों में शहद को भरकर रखती हैं इसीलिए इन मासों के नाम वैदिक काल में मधु–माधव प्रसिद्ध हुए। इस वसन्त ऋतु के आरम्भ होते ही कोयल भी अपने मधुर ध्वनियों से लोगों को आकर्षित करती हैं और नववर्ष का स्वागत करती हैं। कोयल की इन मनोरंजक ध्वनियों को उद्दिष्ट कर किसी कवि ने कहा कि –

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः
को भेदः पिककाकयोः।
वसन्तकाले सम्प्राप्ते
काकः काकः पिकः पिकः।।

देखने में कौवा और कोयल दोनों ही काले दीखते हैं, दोनों में कोई भेद नहीं है पर वसंत ऋतु का आगमन होते ही अपने–अपने स्वरों से कौवा कौवे के रूप में और कोयल कोयल के रूप में पहचाने जाते हैं।

वसंत ऋतु प्रविष्ट होते ही सभी प्राणियों में भी नूतनशक्ति संचित होती है। वर्षाकाल और शीतकाल के बीच में शरद् ऋतु आती है, वह एक सन्धिकाल है। इस ऋतु सन्धि में अर्थात् भाद्रपद, आश्वयुज मासों में मनुष्यों को विविध व्याधियाँ एवं रोगों का संक्रमण होता है। विशेषकर निर्बल व्यक्तियों पर अधिक दुष्प्रभाव पड़ता है। इसी ऋतुसंन्धि में अधिकांश लोग मृत्यु के ग्रास बनते हैं इसलिए व्याधियों का शिकार न होता हुआ जो शरद ऋतु को बिताता है, वह अपने आपको बड़ा सौभाग्यशाली मानता है और मृत्यु को जीतने जैसा प्रसन्न होता है अतएव सभी मनुष्य वेदमन्त्रों के माध्यम से भगवान से प्रार्थना करते हैं कि – हे ईश्वर! हम शरद ऋतु में पूर्ण स्वस्थ रहें–**"पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्"**.....(यजु. 36.24)। इस मन्त्र का भाव यह है कि हमारी सभी इन्द्रियाँ एवं शरीर सौ शरद् ऋतुओं तक पूर्ण स्वस्थ तथा बलशाली हों, सुखयुक्त हों और हम सौ शरद् ऋतुओं से भी अधिक जीने वाले हों। महर्षि दयानन्द ने भी लिखा है कि–"हे मनुष्यो ! जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं, उनको यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो" (यजु. 14.16)। "जो लोग अच्छे पथ्य करने हारे शरद् ऋतु में रोगरहित होते हैं, वे लक्ष्मी (ऐश्वर्य) को प्राप्त होते हैं" (यजु. 21.26)।

कठोपनिषद में भी हम देखते हैं–जब नचिकेता तीसरे वर के रूप में मृत्यु का रहस्य पूछते हैं, तब यमाचार्य अनेक प्रलोभनों को दिखाते हुए कहते हैं कि–**"स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि.... नचिकेतो! मरणं मानुप्राक्षीः"** (कठो. 1.1.23,25)

हे नचिकेत ! तुम जितने शरद् ऋतुओं तक जीना चाहते हो, उतने शरद् ऋतुओं तक जीवित रहने हेतु दीर्घ जीवन को माँगो, पर मृत्यु के रहस्य को मत पूछो। इसी प्रकार वैदिक वाङमय में अनेकत्र शरद् ऋतु एक भयावह के रूप में दीखता है पर इस प्रकार का मृत्युभय या अस्वस्थता का भय वसन्त ऋतु की सन्धि में अर्थात् फाल्गुन–चैत्र मासों की सन्धिवेला में नहीं दीखता बल्कि इसके विपरीत वसन्त के आरम्भ से सभी के शरीर में नूतन चैतन्य प्रसन्नता आदि ही दीखती हैं।

वसन्त ऋतु के आरम्भ होते ही वातावरण, आकाशादि अत्यन्त निर्मल होते हैं एवं अपरिमित आह्लादकर होते हैं। इस ऋतु में सूर्य भूमध्य रेखा पर पहुँचता है। इससे वातावरण में समान शीतोष्ण होते हैं. भूमण्डल पर सभी मनुष्यों को सूर्य का दर्शन होता है। दिन–रात समान होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति में नूतनत्व दिखाई देता है। इसी नूतनत्व का अनुकरण करते हुए प्राचीन काल में सभी मनुष्य इस दिन को संवत्सर के आदि दिन के रूप में, एक पर्व के रूप में मनाया करते थे। वह परम्परा आन्ध्रप्रदेश एवं तेलंगाणा में 'युगादि' (=युग का आदि दिन) के रूप में, जम्मू–कश्मीर में **'नवरेह'** के रूप में, महाराष्ट्र में **'गुडिपड्वा'** के रूप में, असम में **'शेंगली'** के रूप में, केरल में **'विशुदिन'** के रूप में मनाते हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रान्तों में भिन्न–भिन्न नामों से उस पर्व को मनाते हुए आ रहे हैं। इतना ही नहीं ईरान, ईराक देशों में भी **'नौरोज'** (नया दिन, संवत्सर का आद्य दिन) के रूप में वहाँ के लोग नया वर्ष मनाते हैं। इस प्रकार वसन्त ऋतु प्रारम्भ होने के दिन अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन नये वर्ष (संवत्सरादि) को मनाना सर्वमान्य ही नहीं अपितु प्रकृति, सूर्य–चन्द्रादि की स्थितियों के अनुकूल है, वैज्ञानिक है एवं युक्तियुक्त है।

वेदादि में भी वसन्त ऋतु से ही संवत्सर (कालगणना) आरम्भ होने का उपदेश है–**"मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारादावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू** (तैत्तिरीय संहिता 4.4.11.1, 1.4.14, अपि च द्र. यजु. 13.25, 14.6,15,16,27, 15.57)।" यहाँ स्पष्टरूप से वसन्तादि छः ऋतुओं

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गीता और ऋषि दयानन्द जी

● अमर स्वामी

आर्यसमाज के प्रायः सभी विद्वान् गीता का सम्मान करते हैं और गीता को मानते रहे हैं। अब आर्यसमाज में दो तीन सज्जन गीता के घोर विरोधी हैं। उनकी दृष्टि में गीता से अधिक हानिकारक और बुरा ग्रन्थ दूसरा कोई भी नहीं है। वे दो तीन सज्जन गीता को न मानें, सबसे बुरा ग्रन्थ कहें, उसको मीठा विष बतायें, ऐसा मानने और कहने में वे स्वतन्त्र हैं, पर ऋषि दयानन्द जी गीता को त्रिदोष का सन्निपात या कल की राण्ड कहते थे, ऐसा लिखना और कहना उनका उचित नहीं है क्योंकि महर्षि दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में गीता के प्रमाण दिये हैं, वे अपने व्याख्यानों में गीता के श्लोकों का प्रयोग करते रहे। उनके जीवन चरित्रों के पढ़ने से पता लगता है कि वे गीता की कथा भी करते थे और सारी आयु भर गीता के श्लोकों पर उठने वाली शंकाओं का समाधान भी करते रहे। ऋषि के पत्र व्यवहार के पढ़ने से भी पता लगता है कि ऋषि ने अपनी मृत्यु से कुछ मास पूर्व तक अपने पत्रों में गीता के श्लोकों का प्रयोग किया है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने गीता के श्लोकों का प्रयोग कहाँ–कहाँ किस प्रकार किया है यह बताने के लिये ही यह छोटी पुस्तिका लिखी गई है इसमें दिये गये प्रमाणों को पढ़े और विचार करें।

1. श्री देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय के बनाये और सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रचारित–**'ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र'**–'प्रथम भाग पृष्ठ 69 पर लिखा है कि (आगरा में)..... सुन्दर लाल जी ने दयानन्द से अष्टाध्यायी और गीता पढ़नी आरम्भ की।'

2. इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 70 पर लिखा है कि कभी–कभी स्वामी जी भगवद्गीता की व्याख्या करने लगते थे। उनकी व्याख्या ऐसी अपूर्व और सरल होती थी कि उसे पण्डित से लेकर साधारण मजदूर तक सभी समझ जाते थे।

3. इसी ग्रन्थ में इसी पृष्ठ 70 के नीचे टिप्पणी में लिखा है कि दयानन्द ने भगवद्गीता की कथा भी की थी, जिसमें एक मास से अधिक समय लगा था।'

4. स्वामी सत्यानन्द जी कृत **'दयानंद प्रकाश'** के पृष्ठ 71 पर भी यह वृत्त लिखा हुआ है।

5. 'ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र' पृष्ठ 71 की टिप्पणी में लिखा है कि–

एक दिन स्वामी कैलाश पर्वत ने गीता के श्लोक–**'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'** की व्याख्या की, परन्तु उनके अर्थो से श्रोताओं की तृप्ति नहीं हुई तो लोगों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप भी इस श्लोक का अर्थ समझाने की कृपा करें। इस पर उन्होंने उसके ऐसे सुंदर अर्थ किये कि–सब लोग चकित हो गये और कैलाश पर्वत जी ने भी कहा कि–इन दयानंद जी की विद्या बहुत अच्छी है। उस समय स्वामी जी **भागवत** का खण्डन करते थे और **महाभारत** विचारा करते थे।

6. इसी जीवन चरित्र के पृष्ठ 72 की टिप्पणी में लिखा है कि–'एक दिन कुछ लोगों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप कोई ग्रन्थ बाँचें तो काल व्यतीत हो और हम लोगों का भी लाभ हो। उन्होंने **विद्यारण्य स्वामी** कृत **पंचदशी** बाँचने को कहा। महाराज ने इसे स्वीकार कर लिया। बाँचते–बाँचते उसमें ऐसा आया कि कभी–कभी ईश्वर को भी भ्रम हो जाया करता है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह मनुष्यकृत ग्रन्थ है और फिर उसे नहीं बाँचा, हाँ "गीता की कथा करते रहे, यह कथा आश्विन मास से दिवाली के एक मास पश्चात् तक हुई।" लगभग दो मास तक यह वृत्त श्री महाराज के आगरा निवास का है जो वैशाख सं. 1920 विक्रमी से आश्विन सं. 1921 विक्रमी, अप्रैल 1863 से अक्टूबर सन् 1864 तक लगभग 19 मास का हुआ।

7. महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र भाग 1 पृष्ठ 79 में जयपुर वास सं. 1923 वि. के वृत्त में बताया है कि–

'अचरोल के ठाकुर रणजीत सिंह जी के बड़े पुत्र लक्ष्मण सिंह जी को स्वामी जी ने भगवद्गीता पढ़ाई थी।'

इसी जीवन चरित्र के भाग 1 पृष्ठ 83 पर लिखा है कि–"स्वामी जी ने अचरोल के ठाकुर को गायत्री का उपदेश दिया, उनके लिए दशोपनिषद् बम्बई से मँगवाये गये थे। ठाकुर साहिब ने उनके उपदेश से मूर्ति पूजा छोड़ दी थी।

जयपुर के ही प्रसंग में पृष्ठ 84 पर लिखा है कि "इस समय भी निर्भर उनका केवल वेद पर ही था और लोगों को संध्या गायत्री का ही उपदेश देते थे।"

यह सब यहाँ इसलिये बताया है कि–एक गीता विरोधी सज्जन ने यहाँ तक के गीता सम्बन्धी प्रसंगों पर यह कह दिया था कि–"स्वामी जी उस समय पौराणिक ही थे, मूर्ति पूजा आदि मानते और विष्णु सहस्रनाम आदि को भी पढ़ते थे। आपने देखा कि ऊपर के उद्धरणों से उनके पौराणिक होने और मूर्ति पूजा आदि मानने का खण्डन हो गया है।

8. चासी जि० बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) में ऋषि दयानन्द जी ने सं० 1924 विक्रमी में निवास किया था। इस प्रसंग में इसी जीवन चरित्र के भाग 1 पृष्ठ 108 पर लिखा है कि– "चांदोख जि. बुलन्दशहर निवासी ठाकुर महावीर सिंह जी श्री दर्शनों को जाया करते थे और महाराज से धर्म विषय पर बातचीत किया करते थे।"

यहीं लिखा है कि–"स्वामी जी ने ठाकुर महावीर सिंह जी को भगवद्गीता का पाठ करने को कहा था। इस समय स्वामी जी जीव और ब्रह्म कर पृथकत्व मानते थे। पुराणों की जगह ब्राह्मण ग्रंथ पढ़ने को कहते थे।"

'मेरे ऊपर छल प्रयोग का आरोप' एक सज्जन ने मेरे विषय में यह लिखा है कि– 'गीता के पक्ष पोषण में अचरोल के ठा. रणजीत सिंह और चांदोख के ठा. महावीर सिंह के उद्धरणों के कुछ संभाग छपा कर छल प्रयोग कर बैठे हैं।'

इस विषय में वास्तविकता यह है कि मेरे उद्धरण देने के ढंग में छल का नाम निशान भी नहीं है। प्रमाण देने का ढंग ठीक यही है कि–प्रमाण का जितना भाग प्रस्तुत विषय से सम्बन्ध रखता है उतना ही उद्धृत किया जाए, अनावश्यक को भी लिख कर लेख का कलेवर व्यर्थ न बढ़ाया जाय। ऐसा जो भी करते हैं वह ठीक ही करते हैं, ऐसा ही मैंने भी किया है। जिन सज्जन ने मुझ पर छल प्रयोग का मिथ्या दोषारोपण किया था, उन्होंने **ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र भाग 1** के पृष्ठ 204 से यह उद्धरण अपने लेखों में बार–बार दिया वह इस प्रकार है–

"स्वामी जी भगवद्गीता को त्रिदोष का सन्निपात बतलाते थे और कहते थे कि उसमें कहीं तो जीव ब्रह्म का एकत्व प्रतिपादित किया गया है और कहीं उनका पृथकत्व देखने में आता है और कहीं प्रकृति और पुरुष का पृथकत्व माना गया है।" (यह भाषा भी अद्भुत ही है।)

इसके नीचे ही एक पंक्ति मनुस्मृति के विषय में भी है, उसको श्रीमान् जी ने नहीं लिखा, वह इस प्रकार है–

'प्रचलित मनुस्मृति को वह (स्वामी जी) मनु संहिता नहीं मानते थे और उसे भृगु संहिता कहते थे।'

इसको उन्होंने छोड़ दिया, तो मैं उन पर छल प्रयोग का दोष नहीं लगाता हूँ।

उन श्रीमान् जी का कहना यह है कि यहाँ तक जो ऋषि के गीता पढ़ने सम्बन्धी प्रमाण दिये हैं उनके साथ यह भी तो लिखा है कि–पंचदशी आदि भी उस समय पढ़ते थे। ठीक है पढ़ते थे पंचदशी, उसी समय छोड़ दी और गीता अन्त तक नहीं छोड़ी, इसके प्रमाण आगे–आगे आते जायेंगे।

9. महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र भाग 1 पृष्ठ 109 में लिखा है कि–

'रामघाट में स्वामी कृष्णानन्द के साथ महाराज का शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी कृष्णानन्द ने ईश्वरावतार सिद्ध करने के लिए–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

गीता 4/8

गीता का श्लोक बोला। श्री महाराज ने उत्तर में कहा– ईश्वर निराकार है. वह देह धारण नहीं करता है यह (देह धारण करना) तो जीव का धर्म है।

10. इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 125 पर लिखा है कि–

'कर्णवास में–शरत् पूर्णिमा के अवसर पर राव कर्णसिंह के भेजे हुए तीन गुण्डों ने–स्वामी जी पर रात्रि के 2 बजे घातक आक्रमण करना चाहा, स्वामी जी जाग पड़े और (स्वामी जी ने) हुंकार मारी, गुण्डे भाग गये। ऋषि के पास सोने वाले अंगरक्षक ने कहा कि आप कहीं दूसरी जगह चले जाइये। ऋषि ने उत्तर में गीता का श्लोक पढ़ा–

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।'

–गीता (2/23)

और कहा कि मुझको कोई नहीं मार सकता है।

11. इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 133 पर लिखा है कि–

गंगाराम शास्त्री बरतिया वाले बड़ी डींगें हाँका करते थे कि 'हम स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे। स्वामी जी ने उन्हें लिख भेजा कि–यदि वह गीता के इस श्लोक का अर्थ हमारे सम्मुख कर दे तो हम परास्त हो जायेंगे।'

'क्षेत्रज्ञं' चापि मां विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं, यत्तज्ज्ञानं मतिर्मम।।'

गीता 13/2

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

रात्रिकालीन शयन-मंत्र की वैज्ञानिकता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

● आचार्य ओम प्रकाश आर्य

रात्रिशयन मंत्र के पीछे बहुत बड़ा विज्ञान है। इस विज्ञान को जानकर हम अपने जीवन को सुखद बना सकते हैं। रात्रि में मंत्र के साथ शयन करें और प्रातःकाल मंत्र से जागरण करें। यज्जाग्रतो., येन कर्माण्यपसो., यत्प्रज्ञानमुत., येनेदम्भूतं., यस्मिन्नृचः., सुषारथिः. इन छः मंत्रों में मन के बारे में चर्चा है कि हमारा मन कैसा होना चाहिए। **"शिवसंकल्पमस्तु"** कहकर मन पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में मन को द्रव्य बताया है। इस मन द्रव्य का सम्बन्ध बाह्य इन्द्रियों और अन्तः बुद्धि, चित्त, अहंकार और आत्मा से जुड़ा हुआ है। दोनों करणों में यह सेतु का काम करता है। इस पार बाह्य जगत् और उस पार अन्तर्जगत्। पूरा योगदर्शन इसी द्रव्य पर लक्षित किया गया है। हम इसकी गूढ़ता में नहीं जाना चाहते हैं क्योंकि यह वृहद् विषय है। वर्तमान काल में स्थिति को देखते हुए कुछ सामान्य बातें जो जीवन से सम्बन्धित हैं उसी पर चिन्तन करेंगे।

वेदमंत्र तो परमपिता परमात्मा का दिया ज्ञान है। उस ज्ञान का उद्देश्य मानव का कल्याण है क्योंकि वही उसे समझ सकता है। परमात्मा मानवमात्र से कह रहा है कि मनुष्य को इन मंत्रों को बोलकर उसके अर्थ को हृदयंगम करके सोना चाहिए। ऐसा उपदेश क्यों दिया? जिससे रात्रि सुखपूर्वक शयन के साथ व्यतीत हो जाए। जरा **"रात्रि"** शब्द पर विचार कर लीजिए। रा+त्रि।

'रा' का अर्थ रमण या सुखपूर्वक 'त्रि' का अर्थ 'तैर जाना' या 'पार हो जाना' है। स्पष्टतः हम रात्रि में सुखपूर्वक सोवें। सुखपूर्वक सोने में मन की क्या भूमिका है? इसमें मन की बहुत बड़ी भूमिका है। यद्यपि मन जड़ है तथापि आत्मा का मुख्य साधन है। इसी साधन से वह सुख–दुःख की अनुभूति करता है। इन्द्रियों का सारा काम इसी की सहायता से चलता है। जीवन में समस्त शुभाशुभ कर्म मन के संयोग से सम्पादित होते हैं जिसमें मन नहीं लगता, मनुष्य उस काम को नहीं करना चाहता। कभी–कभी नहीं भी करता है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार दिन में मन दौड़ता रहता है किन्तु रात में भी सपने बुनता है। इन सपनों में इसकी मुख्य भूमिका होती है। यह चंचल तो है ही, इसकी चंचलता ही आत्मा के सुख का अर्थात् परमात्मा के आनन्द की प्राप्ति में बाधक है। एकाग्र हो जाए तो साधक है। आज भागदौड़ की जिन्दगी है। अर्थ के पीछे मनुष्य भागा जा रहा है। सुविधाओं का अम्बार लगाना चाहता है। इस चकाचौंध में मन की वृत्तियाँ और चंचल हो जाती हैं। चंचल वृत्तियाँ अशान्ति का कारण हैं। मोबाइल, टीवी, इंटरनेट, वीडियो के माध्यम से मन में नाना प्रकार की तरंगें उठती हैं। सारा दिन मोबाइल, टीवी देखना किसी भी रूप में मन के लिए हितकर नहीं है। जो लोग मोबाइल और टीवी देखकर सोते हैं उनका सारा देखा हुआ दृश्य उलट–पुलटकर विकृत रूप में स्वप्न में दिखलाई पड़ता है। इन सबके पीछे मन ही कारण है क्योंकि वहीं सारा दृश्य समेटकर बुद्धि के माध्यम से आत्मा तक पहुँचाता है। आत्मा वह सारा उलटा–पुलटा दृश्य स्वप्न में देखता है। यदि दृश्य मारधाड़ वाला हुआ, विकृत, स्वप्न टूट भी जाता है फिर नहीं आएगी नींद। छोड़कर भाग गई। नींद के अभाव में बेचैनी स्वाभाविक है। इसे आप जीवन में स्वयं अनुभव करके देख सकते हैं। देखा दृश्य, सुने शब्द मन को बहुत प्रभावित करते हैं। स्वास्थ्य विशेषज्ञों का कथन है कि टी. वी, मोबाइल देखकर कभी नहीं सोना चाहिए। सोने के एक घंटा पहले ही यह सब त्याग देना हितकर है। योगाचार्य, मनीषीजन कहते हैं कि धार्मिक अच्छी पुस्तक पढ़कर सोना चाहिए और शयनकाल के छहों मन्त्रों को बोलकर सोना चाहिए। इससे मन में सात्विक वृत्तियों का उदय होता है जो अच्छे सुखद स्वप्न का कारण होता है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, ऋषिकृत अन्य ग्रन्थ इस दिशा में विशेष लाभकारी होंगे।

वर्तमान में जीवन बहुत भागदौड़ वाला हो गया है। किसी को किसी के पास बैठने का समय नहीं है। पड़ोसी–पड़ोसी को नहीं जानता। भौतिकवाद की चकाचौंध में मन उसी में चक्कर काट रहा है। पर्यावरण प्रदूषित हो चुका है। आर्य समाज को छोड़कर शेष सब अवैदिक पथ पर भागे जा रहे हैं। अन्त में हासिल क्या होगा? कोई चिन्तन नहीं, कोई विचार नहीं। भगवान ने रात को सुख से सोने के लिए बनाया है। जब दिनभर मनुष्य शुभकर्म करेगा, अपना कार्य ईमानदारी और लगन से करेगा, परिश्रम से करेगा, पूजा समझकर करेगा, तभी मन शुभ दिशा में भागेगा, अन्यथा वह अशिव की ओर दौड़ता रहेगा। मंत्र में भगवान से प्रार्थना की गई है कि हे भगवन ! मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो। दिनभर की चर्चा का प्रभाव रात्रि में निद्रा में अवश्य पड़ता है। जब हमारा मन ईश्वर के गुणों का ध्यान करता हुआ आत्मा से खिंचा रहता है तब सपने भी सात्विक आते हैं। यद्यपि समस्त कार्येच्छा का उद्भव स्रोत आत्मा है, वही सोचता है किंतु वह बिना आन्तरिक इन्द्रिय के सहयोग से कुछ नहीं कर सकता इसलिए ऐसा अनुभव होता है कि मन चेतन के समान कार्य कर रहा है। ऐसी अनुभूति आत्मा की चेतनता के कारण है। योगदर्शन में आया है–**"स्वप्ननिद्राज्ञानलम्बनंवा।"** अर्थात् स्वप्न और निंदा के ध्यान से मन को एकाग्र करने में सहायता मिलती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब हम इन मंत्रों पर चिन्तन करते हैं तो स्थिति पूर्णतः विपरीत दिखाई देती हैं। मंत्र जीवन का दर्शन है। जीवन–दर्शन का लाभ तभी होता है जब उसे आचरण में उतारा जाता है। आज मनुष्य के पास चिन्तन करने के लिए समय नहीं है। शुभाशुभ, धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेचन ही नहीं करता। अवैदिक प्रवाह में बहा चला जा रहा है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, वैमनस्य, वैर, क्रूरता, स्वार्थ के वशीभूत होकर जीवन के सुख से दूर जा गिरता है। फिर रात्रि में वह सुख की नींद कैसे सोएगा? प्रार्थना है कि हमारा मन शिवसंकल्प वाला हो। प्रश्न है यदि मन शिवसंकल्प वाला नहीं हुआ तो क्या होगा? सरल ही उत्तर है–मना किए हुए स्थान पर जाने से जीवन के लिए दुःख हो सकता है। सात्विक स्वप्न और गाढ़ निद्रा का ध्यान करने से चित्त में एकाग्रता आती है, सात्विक स्वप्न में प्राकृतिक दृश्य दिखाई देते हैं। इन सबके लिए दिन में शुभकर्म करने आवश्यक हैं। शुभ चिन्तन आवश्यक है। परमार्थ पथ पर चलना आवश्यक है, टीवी, मोबाइल से चिपके रहना कतई हितकारी नहीं है। हमारी मनोवृत्तियाँ भी उसी तरह की हो जाती हैं फिर रात में सुखद निद्रा कैसे आएगी? ठीक समय पर जल्दी सोना, ठीक समय पर जल्दी जागना, सुखमय स्वस्थ जीवन का स्वर्णिम सूत्र है। जाने यह सूत्र जीवन से कितनी दूर हो गया है। जिसके जीवन में यह सूत्र है वह अवश्य सुखी होगा। रात प्राणिमात्र के लिए वरदान है। यहाँ तक कि पेड़–पौधे भी रात में सोते हैं। बताते हैं कि महर्षि दयानन्द को बिस्तर पर जाते ही नींद आ जाती थी, प्रातः जल्दी उठ जाते थे।

यह किसी उपनिषद् का वचन है–**"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"** अर्थात् मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का एकमात्र कारण है। बन्धन में दुःख और मोक्ष में सुख है। बन्धन का कारण संसार में लिप्त रहना और मोक्ष के लिए मन की एकाग्रता, आत्मज्ञान, शान्तचित्त, ध्यान, योगादि हैं। राग–द्वेष से अशान्ति पैदा होती है। मन को इससे दूर रखना चाहिए। आत्मा के आनन्द के लिए मंत्र में उसे शिवसंकल्प वाला होने की कामना की गई है।

वर्तमान स्थिति एकदम विपरीत है। मन नकारात्मक विचारों से ओतप्रोत हो रहा है। फिर वह शिवसंकल्प वाला कैसे होगा? इसलिए वेदज्ञान आवश्यक है। वैदिक शिक्षा, वैदिक जीवन, वैदिक विचार, वेद का प्रचार–प्रसार, वेद का स्वाध्याय मानवमात्र के लिए परमावश्यक है। मनुष्य को सत्यसुख तब तक नहीं मिलेगा, जब तक वह वेदपथानुगामी नहीं होगा। यही एकमात्र विश्व के कल्याण का उपाय है। अन्य सारे उपाय एकांगी और त्रुटिपूर्ण हैं। जीवन में शान्ति चाहिए तो मन को शिव संकल्पवाला बनाना पड़ेगा। संसार में रहते हुए अपने को वेद से जोड़ना पड़ेगा, अन्यथा देखते ही देखते समय बीत जाएगा और सायंकाल आ जाएगा।

आर्य समाज रावतभाटा
वाया कोटा, राजस्थान–323307

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल का शिविर नोएडा में

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल का वार्षिक राष्ट्रीय शिविर 2026 इस बार नोएडा में दिनांक 7 जून से 14 जून 2026 तक एमिटी इन्टर नैशनल स्कूल, सैक्टर–44, नोएडा (उ.प्र.) में आयोजित किया जा रहा है। इसमें भाग लेने के लिए 13 वर्ष से अधिक आयु की आर्य वीरांगनाएँ दिनांक 26 मई 2026 तक अपने नाम निम्नलिखित नम्बरों पर दे ताकि व्यवस्था सुचारू रूप से हो सके।

साध्वी डॉ. उत्तमा यति	**मृदुला चौहान**	**आरती खुराना**	**नीरज कुमारी**
प्रधान संचालिका	**संचालिका**	**सचिव**	**कोषाध्यक्ष**
मो. 9672286863	**9810702760**	**9910234595**	**8920208536**

गतांक से आगे...

उत्पत्ति का विज्ञान क्या है?

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

{श्री हरिश्चन्द्र वर्मा जी के अपनी अनन्त यात्रा पर चले जाने के बाद उनके सुपुत्र द्वारा वर्मा जी द्वारा लिखित लेखों की कुछ अप्रकाशित प्रतियाँ 'आर्यजगत्' को भेजी गई थी। समय–समय पर उस सामग्री को आर्यजगत् के पाठकों को परोसा जाता है। 'उत्पत्ति विज्ञान' पर वर्मा जी का लेख धारावाहिक रूप में प्रस्तुत है।–सम्पादक}

वेदों के पश्चात् ऋषियों द्वारा जिन वेदांगों की रचनायें की जाती थी और सब जो बहिष्कार की गये, टोली थी, ऋषियों द्वारा उन विद्याओं के मंत्रार्थ भाव को वे उन्हें ठीक से न सुनते, न समझते थे, वे अपने अत्याचार कर्मों से बहिष्कृत होते थे। तात्पर्य यह कि आदिम आर्यावर्त के ऋषि लोग सबको सदुपदेश देना चाहते थे, वैदिक ज्ञान से परिचित कराना चाहते थे। मानव भद्र और अभद्र दोनों प्रकार के थे (हाँ आदिम काल के मानव–मानवी, तीन रंग के थे– गोरे, सावले और काले) जो उपद्रव, अन्याय विपरीत कर्म अत्यधिक करते थे, उन्हें (उनके आचरण, स्वभाव के अनुसार) उन्हीं नामों से बहिष्कृत कर दिया जाता थे, और वे उनसे पृथक् होकर श्आर्यावर्त्तश से बाहर, देश–विदेश में जाने लगे। जहाँ अपने अनुकूल उचित स्थान देखते थे, वहीं बस जाते थे, किन्तु उस देश का नाम वही रखते थे, जिन नामों से जाति च्युत् किये जाते थे। उस समय ऋषि और आर्य लोगों ने उनकी टोलियों का नामकरण उनके कर्म के अनुसार किया था (जैसे–लंका, आस्ट्रेलिया, अफ्रिका, कन्धार, इरान, चीन, मिश्र, योरोप आदि) इस विषय को हम आगे चलकर लिखेंगे कि कौन–कौन नाम धारिणी टोली किन–किन स्थानों में गई।

किन्तु जो लोग लाखों वर्ष पूर्वकाल में विभिन्न देशों में समयानुसार जाकर बसे थे, वे लोग जैसे–तैसे व्यवहार, शिकार, भोजन, पूजा आदि करने लगे। किन्तु आर्यों द्वारा श्आर्यावर्त्तश के बाहर अनेक नामों से देश–विदेशों के पूर्वज जो पूर्व समय में चले गये थे (आर्य, ऋषियों द्वारा आदि में बहिष्कार का कारण यह था कि कतिपय ब्राह्मण, अधिकांश क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने–अपने कर्म से पतित हो गये) उनमें कितने दुष्ट, दस्यु, असभ्य, शिकारी और मांसाहारी–अवैदिक व्यवहार करने लगे, मार–काट करते थे (उदाहरण के लिये 'यवन' से एक 'कुरैशवंश' के लोग जो अरब में बस गये थे। किन्तु उन्हें सभ्य बनाने का आर्यों ने बहुत प्रयत्न किया था। आर्यों का आदेश था कि, अन्न–सामग्रियों से देवयज्ञ करो, परमात्मा को मानों, वैदिक शिक्षा–विद्या से सभ्य और भद्र बनो। शिकार न करने, पशुओं को न मारने का आदेश देते थे, किन्तु वे अल्पज्ञ मनमानी करते थे, इसलिये उन्हें आर्यो ने समाज से पृथक् कर दिया था। वे जंगली असभ्य थे।

परन्तु कुछ काल के वाद पुनः ऋषियों, आर्य ब्राह्मणों ने विचार किया कि प्राचीन काल में पृथक् किये गये को सभ्य और ज्ञान विद्या, धर्म से परिचित कराना चाहिये, इस विचार को उचित समझकर, आर्य विद्वान, शिल्पि, कलाकार, मंयीयो (ऋषि मनु द्वारा–आविष्कार एवं निर्माण कराये गये 'नौका' द्वारा) देश–विदेश में आवागमन करने लगे और वे लोग भूली हुई संस्कृत को जैसे–तैसे बोलने लगे,

> **तात्पर्य यह कि, यदि मानव उत्पत्ति काल में, वेद एवं वैदिक साहित्य की रचनायें ऋषि लोग न किये होते तो आज भी पाषाण युग अर्थात् मानव जंगलियों जैसा व्यवहार करता। माता-पिता, पुत्र-पुत्री, बहिन, भगिनी आदि में भेद-भाव नहीं समझता, जिस किसी के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करता। उदाहरण के लिये अफ्रीका के जंगलों में जंगली लोग आज भी हैं पर सभ्य नहीं हुए। किन्तु अब वहाँ ज्ञानी मनुष्यों के पहुँचने से, उनमें परिवर्तन होने लगा है। यदि कोई जंगली लोगों को अपना बच्चा दे दे तो वह भी जंगली बन जायेगा और यदि शिक्षित परिवार में दे दिया जाए तो वह शिक्षित हो जायेगा।**

किन्तु अफ्रिका आदि के जंगलों में रहने वालों का जंगली पन नहीं गया और दूसरी तरफ मिश्र आदि के लोग उनके सम्पर्क से विद्या–विज्ञान में अग्रसर होने लगे। किन्तु वेदों द्वारा ऋषियों ने समय–समय पर जो वैदिक विद्याओं की रचना की थी, वह निम्न प्रकार है–'चार वेद, एवं वेदद्रष्टा के बाद चार वैदिक ऋषियों उपवेद रचे– 1. आयुर्वेद में चिकित्सा, 2. धनुर्वेद में शासन व शस्त्र प्रबन्ध करना, 3. गान्धर्व वेद में संगीत, 4. अथर्ववेद में शिल्पकला। छः वेदांग–(1. शिक्षा, 2. कल्प, 3. निरुक्त, 4. व्याकरण, 5. ज्योतिष, 6. छन्द) चार ब्राह्मणग्रन्थ– एतरेय में (ऋग्वेद सम्बन्धी साहित्य) शतपथ में– (यजुर्वेद सम्बन्धी साहित्य) साम में (सामवेद सम्बन्धी साहित्य) गोपथ में (अथर्व वेद सम्बन्धी साहित्य)

छः **उपांग**–कणाद का 'वैशेषिकदर्शन, विषय–सृष्टि'। 2. गौतम का 'न्यायदर्शन' विषम, उपादान। 3. कपिल का 'साख्य दर्शन' विषय–परिगण न। 4. पतंजल का 'योग दर्शन' विषय–पुरुषार्थ। 5. जैमिनी का 'मीमांसा' विषय – कर्म। 6. व्यास का 'वेदान्त' विषय – निमित्त। दश उपनिषद – 1. ईश, 2. केन, 3. कठ, 4. प्रश्न, 5 मुण्डक, 6 माण्डुक्य, 7. एतेरेय, 8. तैत्तिरीय, 9. छान्दोग्य, 10. बृहदारण्यक।

स्मृति – स्मृति ग्रन्थ भी बहुत पुराने हैं। वेद का नाम श्रुति और वेद के आधार से मनु आदि ऋषियों के बनाये ग्रन्थों को स्मृति कहते हैं। वेद के विरुद्ध स्मृति को कभी नहीं मानना चाहिये, ऐसा मनुस्मृति में लिखा है। स्मृति का ही दूसरा नाम धर्मशास्त्र है। धर्म शास्त्र में प्रजा को नियम में रखने के लिये बड़े–बड़े सुन्दर उपदेश आते हैं।

वेदोत्पत्ति काल सबसे पुराना और उन आर्य ऋषियों का इतिहास है, जो करोड़ों वर्ष पहिले से चला आ रहा है। प्रश्न, करते हैं कि आदि में वेदों के चारों ऋषि मंत्र द्रष्टा कैसे हुए ? आश्चर्य लगता है। वैसे तो ईश्वरीय सारी सृष्टि–मकोड़ों से लेकर, सूर्य पर्यन्त, रहस्य पूर्ण लगता है। उदाहरण के लिये – कतिपय बालकों ने इस साइंस के युग में कम्प्यूटर से पहिले गणित और विचार प्रकट कर दिये और चित्रकला ऐसे–ऐसे बनाये और वाद्य–यन्त्र ऐसे बनाये कि चकित रह गये। पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, अपनी 'जीवात्मा' पुस्तक में लिखे हैं कि ष्मास्टर मदन जैसे कई बच्चे चार–पाँच वर्ष की अवस्था में संगीत के बड़े भारी पंडित सिद्ध हुए। रामानुज महाशय बिना सीखे हुए ही गणित में ऐसे प्रवीण थे कि बड़े–बड़े गणितज्ञ दाँतों तले उंगली दबाते थे।" अभी हाल ही में दिनांक, 7–4–2007 को रात 8 बजे जी. टी. वी में दिखाया जा रहा था कि महाराष्ट्र राज्य के एक 2 वर्ष 5 मास का 'परम' नामक बालक ने संसार के नक्शे पर जिन देशों को जिस किसी ने पूछा तुरन्त उंगली से दिखा दिया और दिखाकर वह हँसने लगता था।

तात्पर्य यह कि, यदि मानव उत्पत्ति काल में, वेद एवं वैदिक साहित्य की रचनायें ऋषि लोग न किये होते तो आज भी पाषाण युग अर्थात् मानव जंगलियों जैसा व्यवहार करता। माता–पिता, पुत्र–पुत्री, बहिन, भगिनी आदि में भेद–भाव नहीं समझता, जिस किसी के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करता। उदाहरण के लिये अफ्रीका के जंगलों में जंगली लोग आज भी हैं पर सभ्य नहीं हुए। किन्तु अब वहाँ ज्ञानी मनुष्यों के पहुँचने से, उनमें परिवर्तन होने लगा है। यदि कोई जंगली लोगों को अपना बच्चा दे दे तो वह भी जंगली बन जायेगा और यदि शिक्षित परिवार में दे दिया जाए तो वह शिक्षित हो जायेगा।

किन्तु सृष्टि कर्त्ता ज्ञान स्वरूप है (क्योंकि जिस प्रकार, मानव शरीर की रचना बुद्धि पूर्वक की, उसी प्रकार उसे धार्मिक, ज्ञानी, सदाचारी और भद्र बनने के लिये वेदों की विद्या ऋषियों को दे दी। जिसने उसे समझा, प्रयोग किया, वह आर्य और ऋषि बन गया और जो नहीं समझा वह अनार्य, दस्यु, और मूर्ख बन गया।

अतः ऋषियों में वैदिक विद्या का ज्ञान इसलिये दे दिया, ताकि उनसे सब सभ्य बनें, विद्वान् बन सकें। अतः संसार में जितनी न्यूनाधिक सभ्यता, विद्या फैली है, उन सबका आदि कारण वैदिक ऋषि, आर्य विद्वान् एवं उनके साहित्य हैं। उदाहरण के लिये, मिश्र देश के त्रिकोण पिरामिड है, जिसके एक–एक पत्थर कई मन अर्थात् क्वींटल के हैं, वे चार हज़ार वर्ष पूर्व इतने भारी पत्थरों को कैसे मंदिर जैसे अधिक ऊँचाई तक उसका शिखर बनाये थे। वैज्ञानिकों के लिये यह आश्चर्यजनक बात है, जो आज की मशीन ही उठा सकती है। इससे प्रमाणित होता है कि उन्होंने कोई ऐसा यन्त्र बना लिया था। ज्योतिष के सम्बन्ध में भी वे जानते थे इसलिये उन्हें भी विद्या ज्ञान का सूत्र निश्चय ही किसी न किसी के माध्यम से अवश्य प्राप्त हुआ होगा। इसके पहिले लाखों वर्ष पूर्व से ही विज्ञान का आविष्कार निर्माण होने लगा था (अयोध्या नगरी का नामकरण आर्यों

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

श्री राम और आर्यसमाज

● भद्रसेन

आर्यसमाज की यह स्पष्ट धारणा है कि आज राम शब्द दशरथ के पुत्र के लिए अधिक प्रसिद्ध हो गया है। तभी तो दूसरे पक्ष को यह कहना पड़ता है, कि मेरा राम दशरथ का बेटा नहीं है। हाँ, ऐसो को फिर कुल, पिता के नाम वाले विशेषण साथ में संयुक्त नहीं करने चाहिए। इससे एक यह बात सिद्ध होती है कि राम शब्द अनेक रूपों में प्रयुक्त होता है। जैसे कि अन्य हरि नारायण आदि शब्द हैं। तब व्यवहार में प्रकरण और विशेषण अलग–अलग करते हैं कि कौन शब्द किसके लिए आया है।

ईश्वर एक ऐसी सत्ता है, जो कर्मफल की व्यवस्था के अनुसार इस सारे जग को बनाता और चलाता है। इसी लिए वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्य आदि गुण, कर्म वाला है। ईश्वर को मानने वाले आस्तिक कहलाते हैं। हाँ, उनमें से बहुत से ऐसे भी होते हैं, जो मानते हैं कि ईश्वर को {किसी रूप में भी} मानना चाहिए, इतने तक ही सीमित होते हैं। इसके साथ विचारशीलों की यह धारणा होती है। जिसका जैसा स्वरूप है, उसको वैसा ही होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का एक व्यवस्थित स्वरूप होता है। यही बुद्धिमत्ता या वैज्ञानिकता है। अतः विचारशील ईश्वर का विशेष स्वरूप स्वीकार करते हैं। ऐसों का विचार है कि जब ईश्वर नित्य है, तो उसका जन्म–मरण से जुड़ा हुआ और विशेष स्थान, समय से सम्बन्ध रखने वाला स्वरूप नहीं हो सकता है। आज लाखों ही नहीं करोड़ो ऐसे लोग हैं जो अपने धर्मशास्त्रों और तर्क के आधार पर दृढ़ विश्वास रखते हैं कि ईश्वर, नित्य, अजर, अमर अविकारी है।

यही बात महामानव, महापुरुष, युगपुरुष, इतिहास पुरुष पर भी लागू होती है। वस्तुतः वही महान कहलाता है, जो अपने अनोखे ज्ञान, कार्यक्षमता, जीवन के कार्यकलाप से औरों की अपेक्षा हर तरह से आगे निकल जाता है। प्रत्येक महापुरुष देशविशेष, कालविशेष, धर्मविशेष और विशेष भाषा, वर्ग, कार्यक्षेत्र से भी सम्बद्ध होता है। इसके साथ वह अपने ज्ञान, जीवन के कार्यकलाप और योग्यता से भी सीमित होता है अतः तब सभी उसको पूरी तरह से स्वीकार करें, यह जरूरी नहीं है।

बहुत सारे ऐसे भी हैं जो अवतार, पैगम्बर के कारण कुछ को ईश्वर के साथ दूसरे रूप में भी स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में इन दोनों रूपों, स्थितियों की रूपरेखा स्पष्ट हो जाने पर निष्पक्ष रूप से यह बात–विचारणीय है, कि श्रीराम को किस रूप में प्रस्तुत करने पर उनका महत्त्व, व्यापकता बढ़ती है या श्री राम का जन–जन के हृदय में स्थान व्यापक होता है।

गौरव किसमें–किसी को गौरव, यश, कीर्ति, नाम तभी प्राप्त होता है जब वह पूरी तरह से ठीक, अच्छा, जचावयुक्त होता है। जो भ्रष्ट उपाय को अपनाये बिना औरों से जितना अधिक आगे निकल जाता है वह उतना ही अधिक गौरवशाली कहलाता है। जैसे संसार में धन जहाँ परिश्रम से उपार्जित होता है, वहाँ पूर्वजों की सम्पत्ति के रूप में या लाटरी, जुआ, शर्त (जीतने) से भी प्राप्त होता है। इन सभी में से जो अपनी मेहनत से ईमानदारी पूर्वक धनी बनते हैं वे ही उत्कृष्ट होते हैं और वे ही धन के मूल्य को सही रूप में आँकने के कारण उसका विनिवेश, विनियोग, उपयोग उचित करते हैं अतः सदा प्रशंसित होते हैं। इसी प्रकार अवतारपन की अपेक्षा अपने परिश्रम, चरित्र से महान बनने वाले स्वतः श्रेष्ठ हो जाते हैं।

कोई व्यक्ति सबसे अधिक क्रियाशील, सफल, विजयी तभी होता है जब उसमें यह आत्मविश्वास, स्वाभिमान जागता है कि जब वह मेरे जैसा या मेरे से कम भी सफल, विजयी हो सकता है या हो गया, तो मैं क्यों नहीं हो सकता। इसीलिए कहा गया है, कि **"तीव्रसंवेगानाभासन्नः"** योग 1,21 अर्थात् जिनमें जितनी अधिक तड़प, दृढ़ इच्छा, तत्परता, आत्मनिर्भरता होती है वे उतने ही जल्दी सफल, विजयी होते हैं।

श्रीराम को जब हम महामानव स्वीकार करते हैं तो उनसे समस्तर पर प्रेरणा स्पर्धा करना सरल हो जाता है। ऐसी स्थिति में श्रीराम से प्रेरणा, प्रोत्साहन लेने का एक सुन्दर अवसर स्वतः प्राप्त हो जाता है कि जैसे श्रीराम हमारे जैसे मानव होते हुए शिक्षा ग्रहण करते समय तथा वनवास में सरलता से कष्ट–क्लेश, भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी आदि सहन करते रहे और प्रसन्नता पूर्वक सम्पत्ति का स्वतः त्याग किया। सारा जीवन हर रिश्ते को बड़ी खूबी से निभाया, वैसे ही हम भी उनकी तरह इन बातों को अर्थात् विद्या प्राप्ति के लिए तप, कारोबार में कष्ट सहन, पारस्परिक सम्पत्ति विभाजन के समय अपने स्वत्व या अंश के त्यागार्थ उधत रहते हुए आपस के सम्बन्धों के पालन में सदा तत्पर रहें। हाँ ! परमात्मा पूरी तरह से पूर्णकाम, सर्वसामर्थ्यवान, असीम, नित्य, सर्वज्ञ है और उसकी तुलना में जीव हर तरह अपूर्ण, अल्पज्ञान–शक्तिवाला, ससीम है और शरीर से संयुक्त हो जाने पर अनित्य भी है। पूर्ण परमात्मा का पूरी तरह से अनुकरण सर्वथा असम्भव भी है। हाँ, प्रभु से आत्मबल, सफलता की प्राप्ति की प्रार्थना ही की जा सकती है।

महर्षि वाल्मीकि ने यत्र–तत्र–सर्वत्र श्रीराम का मानव रूप में ही चित्रण किया है। पारिवारिक विविध सम्बन्धों को निभाते हुए सुख–दुःख की स्थिति में मानसिक भावों को एक मानव के सदृश ही प्रकट किया है। जैसे कि सीता की खोज में श्रीराम की मानसिक विहवलता, लंका युद्ध में लक्ष्मण के बेहोश हो जाने पर भावों का जो उद्वेग उभरा है वह पूर्णतः मानवीयता को ही प्रकट करता है। ऐसे ही श्रीराम से सम्बद्ध जितने भी सम्बन्धी हैं वे सदा श्रीराम को अपने जैसा मानव ही मानकर व्यवहार करते हैं। इनमें से किसी ने भी कभी भी श्रीराम को ईश्वर, अवतार रूप में संकेतित, व्यवहृत, निर्दिष्ट, अभिहित नहीं किया। अपितु स्वयं श्रीराम अपने आपको **"आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्"** युद्धकाण्ड ।। 7।। अर्थात् "मैं दशरथ का बेटा एक मनुष्य हूँ" के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

श्री राम, जानकी सीता, माता कौशल्या अनेक अवसरों पर सन्ध्या, देवयज्ञ करते हुए रामायण में वर्णित है जिससे सिद्ध होता है कि वे सारे ईश्वर के उपासक थे। महर्षि की रामायण में श्रीराम कहीं भी इष्टदेव रूप में वर्णित नहीं हुए। मर्यादा पुरुषोत्तम वाला श्रीराम का मनुष्य रूप ऐसा है जो किसी धर्म, शास्त्र, तर्क से विपरीत सिद्ध नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने पिता पुत्र, पति, भाई आदि से अपनापन चाहता है। जिसका पूर्ण रूप श्रीराम के जीवन में मिलता है इसीलिए भारत के समीपवर्ती वाली जावा, मलेशिया, सुमात्रा, इण्डोनेशिया आदि की मुसलिम जनता में भी रामकथा हिन्दुओं की तरह ही प्यारी है और अभिनीत होती है।

182 शालीमार नगर,
होशियारपुर 146001

☞ पृष्ठ 05 का शेष

गीता और ऋषि ...

शास्त्री जी ने इसका कुछ अर्थ किया, परन्तु स्वामी जी ने उस अर्थ पर कटाक्ष किये कि उन्हें उत्तर न आया।

गीता के अर्थों को समझने वाले समझ सकते हैं कि–

महर्षि दयानन्द जी ने यहाँ उभय पाशारज्जुः को प्रयोग किया था। उनका अभिप्राय यह था कि–यदि गंगाराम शास्त्री इस श्लोक का सत्य अर्थ करेंगे तो श्री कृष्ण जी जीव सिद्ध हो जायेंगे क्योंकि क्षेत्रज्ञ का अर्थ जीवात्मा है और श्री कृष्ण जी ने अपने आपको जीव मानकर ही स्वयं को क्षेत्रज्ञ कहा है।

यदि वह क्षेत्रज्ञ का अर्थ ईश्वर करेंगे (जैसा कि श्री कृष्ण ईश्वर मानने वाले करते हैं) तो गीता से ही उसका खण्डन कर दिया जाएगा क्योंकि इससे पहिले ही श्लोक में कहा जा चुका है कि–

'इदं शरीरं कौन्तेय,
क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः,
क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।'

–गीता 13.1

हे अर्जुन! इस शरीर को क्षेत्र कहा गया है, इसको जो जानता है उसको उसके जानने वाले लोग क्षेत्रज्ञ कहते हैं। यहाँ ब्रह्माण्डों या ब्रह्माण्ड को क्षेत्र नहीं कहा गया है शरीर ही को क्षेत्र कहा है शरीर के जानने वाले को ही क्षेत्रज्ञ कहा गया है। ब्रह्माण्डों या ब्रह्माण्ड के जानने वाले को क्षेत्रज्ञ नहीं कहा है। गंगाराम शास्त्री ने अवतार मानने वालों का श्री कृष्ण जी को ईश्वर बताने वाला अर्थ किया होगा और ऋषि ने इसी श्लोक से उस अर्थ की धज्जियाँ उड़ा दी।

क्रमशः

'शास्त्रार्थ महारथी अमर स्वामी ग्रन्थ संग्रह' में संकलित–'गीता और महर्षि दयानन्द' से साभार {सम्पादक : डॉ. ज्वलन्त शास्त्री}

☞ पृष्ठ 03 का शेष

प्रभु-भक्ति

शक्ति अनुसार उसे दूर करने का प्रयत्न करेगा, प्रत्युत दिन–प्रतिदिन नम्र ही होता चला जायेगा।

ऐसे भक्तों को भगवान् अपने दर्शनों से वंचित नहीं रखते, वे तो उन पर विशेष कृपा करते हैं। इन्हीं कुछ गुणों को धारण करने पर मनुष्य भगवान् के दर्शन कर सकता है। इन गुणों को किस प्रकार अपने अन्दर लाया जाए, इसके कुछ साधन आगे लिखे जाते हैं। मन को तैयार करने के लिए प्रतिदिन यह संकल्प करना चाहिए–

(1) मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। यह माया तो निष्प्राण है, इसको गति देनेवाला मैं आत्मा हूँ। आज से मैं माया के प्रलोभनों में फँसूँगा नहीं। प्रथम तो फिसलूँगा ही नहीं, यदि गलती से फिसल भी गया तो तत्काल सँभल जाऊँगा। माया की क्या मजाल कि मुझ चेतन को दुःखी कर सके!

(2) नहीं–नहीं, मैं यह बुरा कर्म कदापि नहीं करुँगा। मेरी माँ मेरे पास है, वह मेरी रक्षा कर रही है।

(3) अब मैं खोटे सोने से कुन्दन बनता चला जा रहा हूँ कष्ट, क्लेश तथा विघ्न तो केवल मेरे मल नष्ट करने के लिए आते हैं। मैं दुगुने बल से आत्म–दर्शन के मार्ग पर बढ़ जाऊँगा। मेरी माँ ने मेरा बाहु थाम रक्खा है, ठगिनी माया अब मुझे ठग नहीं सकती।

क्रमशः

☞ पृष्ठ 04 का शेष

नया वर्ष कब ?

का वर्णन है और प्रत्येक ऋतु दो–दो मासों में विभाजित है। स्पष्ट है कि वर्ष वसंत ऋतु से व मधु मास से आरम्भ होता है। यहाँ यह भी स्मर्तव्य है कि सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत वेदों में ही बारह मास एवं छः ऋतुओं का वर्णन है। पाश्चात्यों के समान दस मासों से बारह मासों का विकास नहीं हुआ।

वैदिक काल के मधु, माधव आदि जो मासों के नाम हैं, वे कालान्तर में नक्षत्रों के नामों से प्रसिद्ध हुए हैं। इन नाक्षत्रिक नामों के विषय में महर्षि पाणिनि ने स्वविरचित अष्टाध्यायी में वर्णन किया कि–

"सास्मिन् पौर्णमासीति" (4.2.20) अर्थात् पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा जिस नक्षत्र से युक्त होगा उसी नक्षत्र के नाम से मास का नाम होगा। तद्यथा– पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र से युक्त होने पर उस मास का नाम चैत्र होता है। विशाखा नक्षत्र से युक्त होने पर मास का नाम वैशाख होता है। वैसे ही ज्येष्ठ नक्षत्र से ज्येष्ठ मास, (उत्तर) आषाढा नक्षत्र से आषाढ मास, श्रवण नक्षत्र से श्रावण मास, (उत्तर) भाद्रपद नक्षत्र से भाद्रपद मास, अश्विनी नक्षत्र से आश्विन (आश्वयुज) मास, कृत्तिका नक्षत्र से कार्तिक मास, मृगशिरा नक्षत्र से मार्गशीर्ष मास, पुष्य नक्षत्र से पौष मास, मघा नक्षत्र से माघ मास, फाल्गुन नक्षत्र से फाल्गुन मास का नामकरण होता है। इस प्रकार मासों के नामों से ही आकाशस्थ ग्रह–नक्षत्रों की स्थिति का बोध होता है। यह हमारे पूर्वजों के खगोलशास्त्रीय ज्ञान का परिचायक है।

मासों के वैदिक नाम और इस समय प्रचलित नाक्षत्रिक नामों को ऋतुओं के साथ इस प्रकार जानें–

वैदिक नाम	नाक्षत्रिक नाम	ऋतु	अयन
मधु, माधव	चैत्र, वैशाख	वसन्त	उत्तरायण
शुक्र, शुचि[1]	ज्येष्ठ, आषाढ	ग्रीष्म[1]	उत्तरायण
नभस्, नभस्य	श्रावण, भाद्रपद	वर्षा	दक्षिणायन
इष, ऊर्ज	आश्विन, कार्तिक	शरद्	दक्षिणायन
सहस्, सहस्य	मार्गशीर्ष, पौष	हेमन्त	दक्षिणायण
तपस्, तपस्य	माघ, फाल्गुन	शिशिर	उत्तरायण

{**1. द्रष्टव्य–दयानन्द भाष्यम्**–यजुर्वेद 14.6}

इस प्रकार संवत्सर को मास एवं ऋतुओं में विभक्त किया जाता है–**"द्वे रूपे संवत्सरस्य मासा अन्यद् ऋतवो"** (काठक सं. 34.7)। ऋतुओं का क्रम वसन्त से ही आरम्भ होता है ऐसा स्पष्ट वर्णन वैदिक वाङ्मय में अनेकत्र उपलब्ध होता है। यथा–**"मुखं वा एतदृतूनां यद् वसन्तः"** (तैत्तिरीय ब्राह्मण–1.1.2.6,7) ऋतुओं में वसन्त मुख सदृश है, प्रथम स्थानीय है। {**अन्यत्र द्रष्टव्य स्थल– ताण्ड्यमहा ब्रा. 5,9.11, कौषीतकी ब्रा. 5.1, शांखायन ब्रा. 19.3 आदि**} अतः वसन्त ऋतु के आरम्भ से अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन ही नया वर्ष मानना वेदादि शास्त्रों और भारतीय परम्परा से अनुमोदित है। हम सब अंग्रेज़ी कैलेण्डर के दास वा अभ्यस्त होने पर भी विवाह, जन्मदिन, अक्षराभ्यास, गृहप्रवेश, व्यापारादि शुभ कार्यों को आरम्भ करते समय भारतीय पंचांग का ही आश्रय लेते हैं, अंग्रेजी कैलेण्डर का नहीं। यही है भारतीय संस्कृति का अमरत्व।

क्रमशः

☞ पृष्ठ 07 का शेष

उत्पत्ति का विज्ञान ...

ने किया था) वनवास के समय, श्रीराम और लक्ष्मण को ऋषि विश्वामित्र ने अपने आश्रम में आधुनिकतम अस्त्र–शस्त्रों में प्रवीण करके युद्ध कला में और दक्ष कर दिया था।

दक्षिण देश की रियासत 'बस्तर' अब तक विद्यमान है। रियासत बस्तर और हैदराबाद को गोदावरी नदी पृथक् करती है। वह किष्किन्धा पर्वत और पम्पानगरी तेलंगाना आन्ध्र प्रदेश में ही हैं। यहीं वनवासी श्रीराम, श्री लक्ष्मण के साथ सीता की खोज करते–करते पहुँचे थे। यहीं हनुमान की जन्म भूमि थी, अंगद का क्रीड़ा–स्थल, यहीं शबरी तपस्विनी रहती थी, जिसने श्रीराम को मीठे बेर खिलाकर अपना जन्म सफल कर लिया था। यही वह भूमि है जहाँ शूरवीर वानर जाति के योद्धाओं ने श्रीराम की सहायता का वचन दिया था। इसी भूमि ने नल और नील जैसे विद्वान् इन्जीनियर पैदा किये थे, जिसकी स्मृति रखने के लिये 'नलदुर्ग' नाम रखकर एक किल्ला इसी स्थान में है) लंका जाने के लिये उन्होंने ही पत्थरों से रामसेतु बनाया था।

उसी काल के पूर्व से पहिले ऋषि लोग अपनी कुटिया में शिष्यों को विद्याध्ययन कराते थे। उसके पश्चात् महाभारत काल के पूर्व से 'गुरुकुल' में विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती थी। उसके बाद काशी के विश्वविद्यालय में। उसके बाद 'हर्षवर्धन' को 1400 सौ वर्ष से अधिक हो गये, उस समय भी शबिहार राज्यश का नालन्दा विश्वविद्यालय, प्रसिद्ध था। उसमें एशिया के अनेक विद्यार्थी प्रायः दश हजार संस्कृत एवं विभिन्न प्रकार की विद्याध्ययन के लिये आते थे।

रामायण और महाभारत काल में विस्फोटक पदार्थ का आविष्कार हो चुका था। श्रीराम के गुरु ऋषि वशिष्ठ थे। ऋषि विश्वामित्र ने, दुष्टों–राक्षसों को मारने के लिये (जैसा कि हम लिख चुके हैं) शस्त्र प्रदान किया था क्योंकि राक्षस ऋषियों को यज्ञ नहीं करने देते थे। आर्य राजा धनुर्विद्या में बहुत प्रसिद्ध थे। आज के जमाने में जिस तरह बन्दूक आदि की गोली चलती है, उस जमाने में बाण, तलवार, कमान आदि व्यवहार करते थे अतः उन्हीं सब सूक्ष्म सूत्रों से विकसित होकर क्रमशः साइंस की उन्नति होती रही। उस समय में भौतिक विज्ञान की अधिक उन्नति नहीं थी। उस जमाने में वे लोग अधिकतर योगाभ्यास करते थे और प्राणायाम द्वारा जादू की तरह आश्चर्य जनक योगवल से सिद्धियों को प्राप्त कर सर्वश्रेष्ठ महापुरुष और ऋषि बन जाते थे, उदाहरण के लिये, श्रीकृष्ण और ऋषि व्यास देव हैं।

देखिये – महाभारत काल तक आर्यों का सार्वभौम राज्य था। आधुनिक दिल्ली के समीप .... बन को साफ कर आरण्यक हिंसक पशुओं से मुक्त कर इन्द्रप्रस्थ में राजधानी बनाई थी। उस समय महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सभी देश के राजा–महाराजा, ऋषि – महर्षि आये थे।

कृष्ण तथा अर्जुन (अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नेय मान नौका कहते हैं, उस पर बैठ के) पाताल में जाकर उद्यालक ऋषि को ले आये थे। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे। चीन का भगदत्त, अमेरिका का बभ्रुवाहन, योरोप देश का विडालाक्ष अर्थात् मार्जार के सहश्य आँख वाले, और ईरान का शल्य आदि राजा उस यज्ञ और महाभारत में आज्ञानुसार आये थे।

धृतराष्ट्र का विवाह, गंधार जिसको "कंधार" कहते हैं, वहाँ की राजपुत्री से हुआ था। माद्री का, पाण्डु की स्त्री "ईरान" के राज कन्या थी और अर्जुन का विवाह जिसको अमेरिका कहते हैं, वहाँ के राजा की लड़की श्उलोपी के साथ हुआ था (पंचाल देश की राजकन्या जो हिमालय और गंगा के दोनों ओर स्थित है) द्रोपदी का विवाह अर्जुन से पुनः हुआ था) महाभारत के समय, देश, देशान्तर द्वीप द्वीपान्तर में न जाते होते तो यह सब बातें क्यों कर हो सकती? (स.प्र. दशम, समु.)

विदेशों के अलावा 'राजसूय यज्ञ' में आर्यावर्त के 86 राज्यकुलों के प्रमुख पुरुष तो स्वयं ही पाण्डव साम्राज्य के अंग बन गये थे। **क्रमशः**

मु. पो मुरारई, जिला–वीरभूम
(पश्चिम बंगाल)

पत्र/कविता

पपीता

पपीते के फायदे

क्या आपने कभी सोचा है कि रोज का साधारण सा फल – पपीता आपकी सेहत के लिए कितना फायदेमंद हो सकता है?

यह फल न सिर्फ आपकी पाचन क्रिया को बेहतर बनाता है, बल्कि यह डायबिटीज से लेकर त्वचा, वजन, आंखों की सेहत और यहाँ तक की कैंसर से सुरक्षा में भी भूमिका निभाता है। आइए जानते हैं पपीता खाने के ढेरों फायदे, डॉक्टरों की राय और जरूरी सावधानियाँ।

पपीता खाने का सही तरीका

सुबह खाली पेट खाना सबसे ज्यादा फायदेमंद माना जाता है।

रात में खाना भी सुरक्षित है लेकिन मात्रा नियंत्रित रखें।

रोजाना 100–150 ग्राम पका हुआ पपीता पर्याप्त होता है।

पपीते के फायदे

1. पाचन को सुधारे
2. डायबिटीज में फायदेमंद
3. वजन घटाने में मदद
4. त्वचा और बालों के लिए फायदेमंद
5. रोग प्रतिरोधक क्षमता और दिल की सेहत
6. आंखों के लिए फायदेमंद
7. कैंसर और सूजन से सुरक्षा

पपीते के अन्य हिस्सों के फायदे

पपीते के पत्ते

डेंगू में प्लेटलेट्स बढ़ाने के लिए पत्तों का रस असरदार माना जाता है।

पपीते के बीज

बीजों में कमजव गुण होते हैं जो लीवर और पाचन को साफ करते हैं।

कब नहीं खाना चाहिए पपीता?

गर्भवती महिलाएँ कच्चा पपीता न खाएँ, इसमें लेटेक्स होता है जो गर्भपात का कारण बन सकता है।

गायत्री मंत्र : विवेक-जागरण का वैदिक महाशंखनाद

{यह कविता गायत्री मंत्र के बाह्य उच्चारण से आगे बढ़कर उसके आंतरिक प्रकाश, नैतिक अनुशासन और बौद्धिक जागरण को अभिव्यक्त करती है। यहाँ गायत्री मंत्र केवल मंत्र नहीं, बल्कि मनुष्य को मनुष्य से महापुरुष बनाने वाली वैदिक चेतना की ज्वाला है}

नहीं
यह केवल जप का क्रम नहीं,
नहीं,
यह अधरों की थरथराहट मात्र नहीं,
यह तो मनुष्य के अंतर में
सोई हुई अग्नि को
फिर से पुकारने का
ऋषियों का उदात्त स्वर है।
जब–जब मोह ने
मन के आकाश पर
काला धुआँ फैलाया,
जब–जब स्वार्थ ने
बुद्धि के निर्मल दर्पण पर
अपना मलिन मुख पोता,
जब–जब मानव
अपने ही बनाए अंधकार में
दिशाहीन हुआ,
तब–तब
वेद की अमर वाणी से
यह मंत्र उठा
जैसे प्रलय–रात्रि के बाद
पूर्व दिशा में
पहली बार
सूर्य ने नेत्र खोले हों।

ओ३म् –
एक अक्षर,
पर उसमें सीमित नहीं आकाशय
एक ध्वनि,
पर उसमें बँधा नहीं अनंतय
यह उस एकमात्र, निराकार, न्यायकारी,
सर्वव्यापक परमेश्वर का
मंगल–स्मरण है,
जो न मूर्ति है,
न कल्पना,
न कथा,
न किसी संप्रदाय का सीमित देव,
वह सत्य है,
वह चेतन है,
वह आदि है,
वह सबका आधार है।

भूर्भुवः स्वः –
यह लोकों की गिनती नहीं,
यह तो अस्तित्व की सीढ़ियाँ हैं।
यह देह से प्राण,
प्राण से मन,
मन से ऊर्ध्व चेतना तक
उठते हुए जीवन का बोध है।
और उन सबके पार
जो शाश्वत सत्ता है,
यह उसी की ओर
अंतर का उन्मुख होना है।

तत्सवितुर्वरेण्यं –
वह वरणीय परम तेज,
जो केवल गगन में नहीं चमकता,
मनुष्य के विवेक में भी उदित होता है,
जो केवल दिन नहीं बनाता,
दृष्टि भी बनाता है,
जो केवल प्रकाश नहीं देता,
पथ भी देता है।
वही
श्रम में मर्यादा है,
वही ज्ञान में नम्रता,
वही बल में संयम,
वही समृद्धि में सेवा,
वही संघर्ष में धैर्य,
वही विजय में विनय है।

भर्गो देवस्य धीमहि–
हम उस दिव्य तेज का ध्यान करें
जो अज्ञान को भस्म करे,
जो पाप–वृत्ति को गलाए,
जो असत्य के जमे हुए हिमखंड को
सूर्य–ताप बनकर पिघला दे।
वह तेज
मनुष्य का नाश नहीं करता,
उसके भीतर बैठे अंधकार का अंत करता है।
वह हृदय को कठोर नहीं,
निर्मल बनाता है।
वह जीवन से पलायन नहीं,
धर्मयुक्त पुरुषार्थ सिखाता है।
और आज,
हाँ, आज, जब मनुष्य
लोहे, धुएँ, वेग और वैभव के बीच
अपने ही आत्मस्वर को खोता जाता है,
जब शब्द बहुत हैं
पर सत्य दुर्लभ,
जब साधन विराट हैं
पर उद्देश्य क्षीण,
जब शिक्षा है
पर चरित्र का आलोक नहीं,
ऐसे समय में
गायत्री
सिर्फ एक वैदिक मंत्र नहीं,
मानवता के विवेक की अंतिम रक्षा–पंक्ति है।

धियो यो नः प्रचोदयात्–
हमारी बुद्धियों को प्रेरित करे।
यही प्रार्थना है, यही पुकार,
यही संघर्ष, यही साधना।
क्योंकि पतन पहले भवनों का नहीं होता,
विचारों का होता है।
विनाश पहले सीमाओं पर नहीं आता,
निर्णयों में जन्म लेता है।
अंधकार पहले रात्रि में नहीं उतरता,
वह बुद्धि के भ्रम में पनपता है।
इसलिए उठो
मंत्र को केवल जिह्वा पर मत धरो,
उसे जीवन में जलाओ।
तुम्हारी दृष्टि
सत्य से दीप्त हो,
तुम्हारा कर्म
यज्ञ से पवित्र हो,
तुम्हारा व्यवहार
न्याय से संतुलित हो,
तुम्हारी वाणी
ऋजुता से सिंचित हो,
और तुम्हारा जीवन
केवल अपने लिए नहीं,
समष्टि के कल्याण के लिए धड़के।
यही आर्यत्व है।
यही वैदिक पथ है।
यही मनुष्य का
मनुष्य से महापुरुष बनने का क्रम है।

गायत्री–
कंठ का अलंकार नहीं
चरित्र का अनुशासन है।
वह स्मरण का विषय नहीं
जागरण का व्रत है।
वह कर्मकांड नहीं,
विवेक, सत्य और लोकहित का
अग्निहोत्र है।
जब यह मंत्र केवल बोला नहीं,
जिया जाएगा,
तब मन पुनः उजले होंगे,
घर पुनः संस्कार के केंद्र होंगे,
राष्ट्र पुनः चरित्र से ऊँचा उठेगा,
और मनुष्य अपने भीतर छिपी
ईश्वरदत्त ज्योति का
साक्षात्कार करेगा।

गायत्री–
तू उपास्य नहीं,
उपासना का पथ है,
तू देवता नहीं,
देवत्व की दिशा है,
तू शब्द नहीं,
शुद्ध बुद्धि की वह वैदिक ज्वाला है
जिसमें जलकर
अहंकार राख होता है
और सत्य
दीप बनकर खड़ा हो जाता है।

डॉ कीर्ति शर्मा

सम्मानित साध्वी/संन्यासी

स्वामी ऋतस्पति परिव्राजक जी

माता सत्यप्रिया यति जी

साध्वी डॉ उत्तमा यति जी

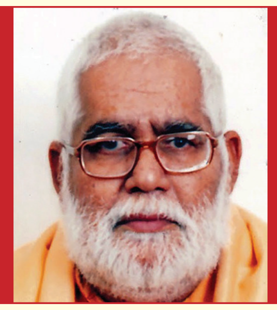
स्वामी प्रणवानन्द जी

स्वामी प्रद्युम्न जी

स्वामी गुरुकुलानन्द कच्चाहारी जी

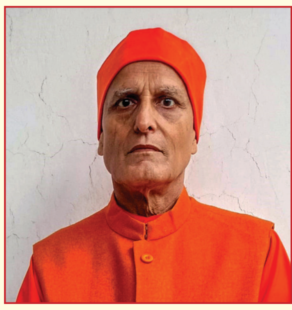
स्वामी वेदामृतानन्द जी

स्वामी चित्तेश्वरानन्द जी

डॉ. देवव्रत सरस्वती जी

स्वामी सुदर्शन देव आचार्य जी

स्वामी सच्चिदानन्द जी

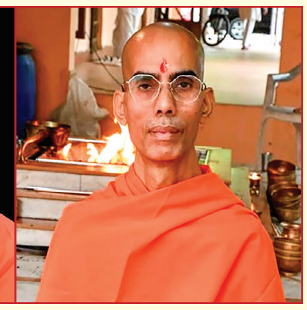
स्वामी मुक्तानन्द जी

☞ पृष्ठ 01 का शेष

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि ...

इस वर्ष **सोलह संन्यासियों**– **स्वामी ऋतस्पति परिव्राजक,** (होशंगाबाद), **माता सत्यप्रिया यति,** (वैदिक मोहन आश्रम, हरिद्वार), **साध्वी डॉ उत्तमा यति,** (राजस्थान), **स्वामी प्रणवानन्द,** (गुरुकुल गौतम नगर, दिल्ली), **स्वामी प्रद्युम्न,** (जखराणा, राजस्थान), **स्वामी गुरुकुलानन्द कच्चाहारी,** (पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड), **स्वामी वेदामृतानन्द,** (वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार), **स्वामी चित्तेश्वरानन्द,** (देहरादून), **डॉ. देवव्रत सरस्वती,** (द्रड़ौली, जि. रिवाड़ी, हरियाणा), **स्वामी सुदर्शन देव आचार्य,** (नुआपाड़ा, उड़ीसा), **स्वामी सच्चिदानन्द,** (राजस्थान), **स्वामी मुक्तानन्द,** (रोज़ड़), **स्वामी दीनानाथ सरस्वती,** (बरेली, उत्तर प्रदेश), **स्वामी नित्यानंद सरस्वती,** (धौलास, देहरादून), **स्वामी धरानन्द भारती,** (निजामाबाद, तेलंगाना), **पन्द्रह विद्वानों** – **डॉ. शशिप्रभा कुमार,** (दिल्ली), **डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा,** (शिवगंज, राजस्थान), **डॉ. प्रियंवदा वेदभारती,** (नजीबाबाद, उत्तर प्रदेश), **डॉ. सुकामा आचार्या,** (रोहतक, हरियाणा), **आचार्या डॉ. प्रीति विमर्शिनी,** (वाराणसी), **डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री,** (अमेठी, उत्तर प्रदेश), **आचार्य प्रदीप कुमार शास्त्री,** (रेवली, सोनीपत, हरियाणा), **डॉ वागीश आचार्य,** (एटा, उत्तर प्रदेश), **डॉ. रघुवीर वेदालंकार,** (सरस्वती विहार, दिल्ली), **डॉ. महावीर मीमांसक,** (पश्चिम विहार, दिल्ली), **प्रो. (डॉ.) दिनेश शास्त्री,** (गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड),

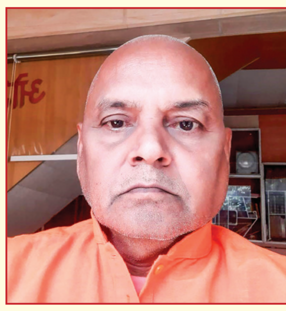
स्वामी दीनानाथ सरस्वती जी

स्वामी नित्यानंद सरस्वती जी

स्वामी धरानन्द भारती जी

डॉ. वेदपाल, (मेरठ), **डॉ. महेश विद्यालंकार,** (पूर्वी शालीमार बाग, नई दिल्ली), **डॉ. वीरेन्द्र अलंकार,** (पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़), **वाचस्पति मर्रि कृष्णा रेड्डी,** (तेलंगाना) को शॉल, प्रशस्तिपत्र एवं भेंट देकर सम्मानित किया गया।

महात्मा हंसराज को समर्पित एक समूहगान के पश्चात् मान्य प्रधान जी ने उपस्थित समुदाय को अत्यन्त भाव भरे शब्दों में अपना उद्‌बोधन दिया। प्रधान जी ने कहा महात्मा हंसराज जी के तप और त्याग से प्रेरणा लेकर डी.ए.वी. की छवि को पवित्र और समुज्वल बनाने की दिशा में सुदृढ़ प्रयास करने होंगे और **'मनुर्भव'** के वैदिक संदेश को हृदय में बैठाकर डी.ए.वी. को मानव निर्माण की सच्ची प्रयोगशाला बनाना होगा।

विशिष्ट सम्मान–सम्मान की इस विशिष्ट परम्परा में शिक्षा तथा सुप्रशासन में विशिष्ट योगदान देने वाले दो महान

शेष पृष्ठ 12 पर ☞

सम्मानित विद्वान/विदुषियाँ

डॉ. शशिप्रभा कुमार जी

डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा जी

डॉ. प्रियंवदा वेदभारती जी

डॉ. सुकामा आचार्या जी

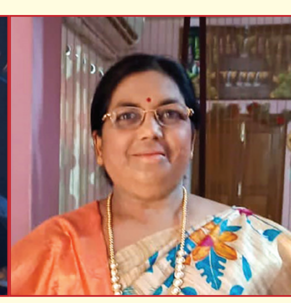
आचार्या डॉ. प्रीति विमर्शिनी जी

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री जी

आचार्य प्रदीप कुमार शास्त्री जी

डॉ वागीश आचार्य जी

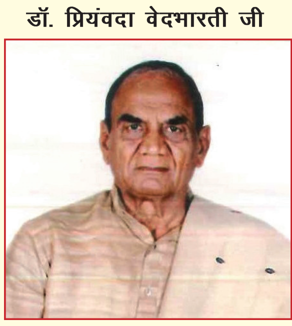
डॉ. महावीर मीमांसक जी

प्रो. (डॉ.) दिनेश शास्त्री जी

डॉ. वेदपाल जी

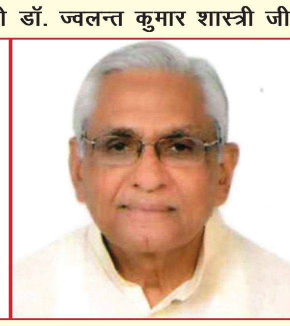
डॉ. महेश विद्यालंकार जी

डॉ. वीरेन्द्र अलंकार जी

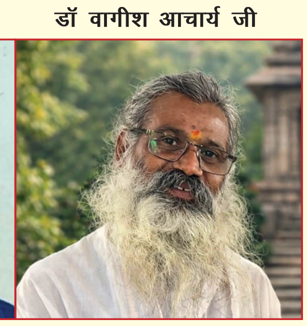
वाचस्पति मर्रि कृष्णा रेड्डी जी

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2026

☞ पृष्ठ 11 का शेष

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि ...

विभूतियों प्रोफेसर डॉ. कर्मजीत सिंह, कुलपति गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी अमृतसर तथा प्रोफेसर डॉ. टंकेश्वर कुमार, कुलपति सैन्ट्रल यूनिवर्सिटी, हरियाणा मीरपुर, महेन्द्रगढ़ को विशिष्ट सम्मान प्रदान किया गया।

सम्मान की इस परम्परा में शिक्षा तथा सुप्रशासन के लिए डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल दुर्गापुर (पं. ब.) के प्राचार्य एवं प्राचार्या श्रीमती पापिया मुखर्जी डी.ए.वी. सै.–14 फरीदाबाद की प्राचार्या श्रीमती चारु मैनी व श्री नीरज कुमार प्राचार्य, डी.ए.वी. पटेल नगर को सम्मानित किया गया।

डी.ए.वी. शैक्षिक उत्कृष्टता केन्द्र द्वारा आयोजित इंग्लिश, गणित, विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी विषयों के ओलम्पियाड़ में प्रथम स्थान पाने वाले सोलह छात्र–छात्राओं–इमरान सिंह उदित, मानिक मित्तल, राजदीप गोस्वामी, साई प्रसाद मलिक, अर्णव माझी, अभिराज समन्ता, देवराज जैश, ऋषित कुन्दू, श्रीजोन प्रमाणिक, अनुराग बैनर्जी, हेमन्त अग्रवाल, साई सुबित साहू, अंश सिंह, मृत्तिका डे, अभिनव बैनर्जी को उनकी उपलब्धियों के लिए सम्मानित किया गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के मुख्य पत्र ***'आर्यजगत्'*** तथा ***'आर्यन हैरीटेज़'*** के इस अवसर के लिए तैयार किए गए महात्मा हंसराज विशेषांकों का विमोचन आदरणीय आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी जी एवं मंचस्थ विशिष्ट अतिथियों द्वारा किया गया।

इसके बाद हरियाणा के नौ डी.ए.वी. विद्यालयों के 1000 छात्र–छात्राओं द्वारा महात्मा हंसराज के जीवन पर आधारित संगीतमयी नृत्य नाटिका ***'समर्पण'*** के मंचन ने दर्शकों का दिल जीत लिया। इस नृत्य नाटिका का निर्देशन डी.ए.वी. साहिबाबाद के संगीत शिक्षक स्वपन जी द्वारा किया गया।

अध्यापकों द्वारा समूहगान के रूप में महात्मा हंसराज जी को संगीतमयी श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

स्वामी ऋतस्पति परिव्राजक जी ने अपने आशीर्वाद वचनों में आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी जी के परिवार की आध्यात्मिक परम्परा का स्मरण दिलाया और कहा कि डॉ. सूरी के उद्बोधन में महात्मा आनन्द स्वामी जी की झलक स्पष्ट नज़र आ रही थी। उन्होंने प्रधान जी ने नेतृत्व में डी.ए.वी. में आए बदलाव की चर्चा की। इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

शान्ति पाठ से आयोजन संपन्न हुआ। इस कार्यक्रम का सीधा प्रसारण डी.ए.वी. चैनल पर किया जा रहा था जिसे देश–विदेश के असंख्य दर्शक देख रहे थे।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**